# दिगम्बर

(सामाजिक मौलिक उपन्यास)

लेखक

सूर्यकुमार जोशी

१९५७

भारती साहित्य मंदिर

फव्वारा, — दिल्ली

प्रकाशक
गौरीशंकर शर्मा
भारती साहित्य मंदिर
फव्वारा, दिल्ली—६

एस० चंद एण्ड कम्पनी
आसफअली रोड नई दिल्ली
फव्वारा दिल्ली
माईहीरा गेट जालन्धर
लाल बाग लखनऊ

मूल्य २।)

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली—६

# प्रकाशकीय

इधर हिन्दी कथा-साहित्य को कई उदीयमान लेखको ने अपनी कृतियों द्वारा समृद्ध करने का प्रयत्न किया है, जिन्होने मौलिकता की दृष्टि से कई नये प्रयोग किये है। जिनमे नये भाव, नई शैली एवं नवीन कथानको द्वारा मानव-वृत्तियो को अभिव्यक्त करने की क्षमता है। इस पुस्तक के लेखक भी उपन्यासकार के रूप में हमारे सामने आये है। यह आपकी दूसरी मौलिक कृति है। रचना कैसी है और लेखक अपने प्रयास मे कहाँ तक सफल हुआ है यह विज्ञ पाठको पर ही आधारित है।

# दिगम्बरी

मैं तीस वर्ष का हो चला था, और मैंने अपनी जिन्दगी मे एक भी पैसा न कमाया था। चूकि मैने एक व्यापारी परिवार मे जन्म लिया था, मेरी यह असफलता अपराध की भावना बनकर मुझमे घर कर बैठी थी।

यह नही कि मुझे इस दिशा में अपना पौरुष प्रमाणित करने का अवसर ही न मिला हो। जब मै बीस-बाईस वर्ष का था तभी मुझे अपने मृत पिता के व्यापार का कुछ अंश संभालने का मौका दिया गया। विदेशी दवाओ की हमारी काफी बडी दुकान थी, पर जिस दिन से मैंने उसका भार सभाला नुकसान ही होता गया। हमारे यहा सब दवाए मिलती थी, केवल वही न मिल पाती जो ग्राहक चाहते थे, और दवाओ के दाम बढ जाने पर भी हम पुराने दामो पर ही बेचते रहे। नतीजा यह हुआ कि साल-डेढ साल मे आठ-दस हजार रुपये का नुक्सान उठाने के वाद मुझे दुकान से हटा दिया गया।

मेरे पिता काफी सम्पति छोडकर मरे थे, लेकिन मेरे मामाजी, जिनके कधो पर व्यापार के सचालन और मेरे सग्क्षण का भार था, मुझे पैसा न कमा सकने के कारण निकम्मा समझते थे। मै पूरी तरह निकम्मा तो न था, पर अभागा अवश्य था। जिस काम मे हाथ डालता वही बिगड जाता।

मुझे याद है बचपन मे मैंने अपने घर के आँगन मे एक पौधा लगाया था और बडे चाव से उसे सीचा था। दिन भर उसके पास मँडराता रहता और सुबह उठकर सबसे पहले यह देखने दौडता कि उसमे कली फूटी है या नही। लेकिन वह पौधा मुरझा गया और उसकी बची-खुची पत्तियाँ भी सूखकर झड गई। मेरे जीवन की इस प्रथम असफलता ने शायद मेरे भावी जीवन का स्वरूप इगित किया था।

मैंने अपने जीवन की एक दिशा, एक अर्थ देने के लिए क्या नही किया—राजनीति में भाग लिया, समाज-सेवा का आडम्बर रचा, चित्र-कला का प्रयास और सगीत का अभ्यास किया। किन्तु रहा मैं सदा असफल ही।

लेकिन मुझे अपने बारे में एक चीज अच्छी तरह याद है। मैं किसी चीज़ की तलाश में था। मै क्या खोज रहा था, तब मैं स्वयं न जानता था। किन्तु वह खोज इतनी प्रबल थी कि दिन भर सडकों पर, शहर के दूर-दूर कोनो में मारा-मारा फिरता था। लाइब्रेरियों और म्युजियमों में, बाग-बगीचो और सिनेमा-थियेटरो में निरन्तर वह खोज चलती रहती थी।

आज मैं कह सकता हूँ कि वह स्त्री की खोज थी, शक्ति की खोज थी।

मै शादी कर सकता था, पर विवाहित स्त्री पत्नी हो सकती है, समग्र नारी नही—ऐसा मेरा खयाल था। और वेश्या तो, मैं अपने निजी अनुभव से जान चुका था, रेत का ठडा ढेर है जिसकी रगड़ से प्राण का सचार होने की बजाय रहा-सहा भी बुझ जाता है।

धीरे-धीरे मै एकाकी होता गया। मै शराब पीने लगा। नशे में मेरी सुप्त, अतृप्त इच्छाएँ कल्पना के सहारे सतुष्टि प्राप्त करने का प्रयास करने लगी। मैं समझने लगा कि जो अदृष्ट और अज्ञात वस्तु मेने मूर्त्त जीवन में नही पाई, साहित्यिक कल्पना मे पा सकूगा। मैंने महान् कलाकारों की कृतिया पढना आरंभ किया, और उन्होने मुझे किसी हद तक गिरफ्तार भी किया, लेकिन स्वय लिखने की कोशिश करने पर सब कुछ बिखरकर रह जाता था।

फिर भ्रमण मे पलायन पाया। नए-नए सुदूर दृश्यों को देखने की इच्छा जाग उठी। अपनी असफलताओं को भूल जाने, अपनी परेशानियों से रिहाई पाने या शायद अपनी पुरानी खोज को नए सिरे से फिर शुरू करने का यह ज़रिया था।

दो वर्ष तक देश के विभिन्न भागो में घूमता रहा। कही शाति, तृप्ति, पूर्ति न मिली। और असली मुश्किल यह थी कि मैं यह भी न जान पाया था कि दरअसल मै चाहता क्या था ! इतना तो मै जान गया था कि जो मैं चाहता था वह दूसरा कोई मुझे नही बता सकता था। वह मुझे स्वय खोजना था। किन्तु मै इतला दुर्बल हो चुका था कि कोई नया प्रयास आरम्भ करने की मुझ में शक्ति न थी। मैं फिर मारा-मारा फिरने लगा।

इस बार दर्शनशास्त्र और अध्यात्मवाद मे रुचि जागी। गीता और उपनिषदो द्वारा अपनी समस्या को समझने की कोशिश करने लगा। साधु-सतो का सत्सग किया पर फिर भी कुछ हाथ न लगा। हा, ऋषिकेश मे एक साधु मिले। उन्होने कहा था, "तुम स्थिर जल के समान हो, तुम्हे प्रवाह चाहिए, उस एजिन की तरह हो जिसे वाष्प चाहिए। तुम्हे शक्ति चाहिए, देवी चाहिए, मा चाहिए। साधक बन जाओ। परम शाति प्राप्त कर लोगे।"

मैं चुप हो गया। अब किसी नई विद्या, नए शास्त्र, नई साधना आरंभ करने की मुझ मे सामर्थ्य न थी। यदि मुझे शक्ति मिलनी थी तो शक्ति को स्वय मेरे पास आना था, अन्यथा मेरा मार्ग स्पष्ट था—विनाश और विघटन का मार्ग।

ऋषिकेश का आध्यात्मिक वातावरण छोडकर शिमला के विलासी वातावरण मे चला आया और शराब की मदद से आत्म-हनन के मार्ग पर आगे बढने लगा। शिमला में उन दिनो बारिश हो रही थी और मै भी होटल के अपने कमरे से बाहर न निकलता था। सुबह से ही शराब की बोतल लेकर बैठ जाता और हरे, बैंगनी, नीले पहाडों को होटल की खिड़की के चौखटे मे से देखता रहता। जीवन की सभी आशाए असफलताओं के भार से दब चुकी थी, पर फिर भी न जाने क्यों रह-रह कर मन कहता था कि अगर मेरे पास रगों का डिब्बा होता तो मैं उन पहाडी दृश्यों को सफलता के साथ उतार सकता था। लेकिन

में यह भी जानता था कि रंगो का डिब्बा होते ही चित्र बनाने की मेरी रुचि जाती रहती। अब तो मैं नशे में घुलने की तरह ही असफलता के दुःख में घुलने का भी आदी हो चला था, जीवन मे तीस-पैंतीस वर्ष बाद आदते बदलना आसान नही।

और ऐसी ही मानसिक स्थिति मे एक दिन मैं शिमला से भी चल दिया। मै हार चुका था, टूट चुका था, निकम्मा करार हो चुका था।

और तभी मेरे धैर्य की परीक्षा लेने के बाद मुझे दीक्षा देने देवी भगवती अवतीर्ण हुई।

× × ×

शिमला स्टेशन पर कालका जाने वाली गाडी खडी थी। मै भी अपने डिब्बे के बाहर खडा गार्ड की सीटी का इन्तजार कर रहा था कि एक आदमी ने आगे बढकर मुझे नमस्कार किया। कहने लगा कि जनाने डिब्बे मे उसकी बहन बैठी है। पहली बार सफर कर रही है। क्या मै कालका पहुच कर माल-डिब्बे से उसका सामान उतरवाने की तकलीफ गवारा करूगा ?

आम तौर पर मैं कभी किसी का कोई काम न करता था। मैंने अपनी जिन्दगी मे शायद कभी किसी को एक गिलास पानी भी न पिलाया हो। पर उस समय मुझे यह जानकर कुछ खुशी हुई कि उस लम्बे-चौडे प्लेटफॉर्म पर सैकडों आदमियो की भीड मे उस आदमी ने एक छोटी सी फरमाइश करने के लिए मुझ को ही चुना।

"लेकिन आपकी बहन कहा बैठी हैं ?" मैंने पूछा, "सामान की रसीद क्या उन्ही के पास है ?"

"आइये, मै दिखा दू," कहकर वह जल्दी-जल्दी आगे बढने लगा और मैं उसके पीछे हो लिया। दो-तीन डिब्बे ही हम आगे बढ पाए होंगे कि गार्ड की सीटी बज उठी। और जैसे ही हम जनाने डिब्बे के पास पहुचे थे कि एजिन ने सीटी दी और एक झटके के साथ गाड़ी चल पडी।

"वह है, हरी साडी वाली।"

मैंने दूर से एक नज़र उसे देखा और वापस अपने डिब्बे की ओर दौड पडा।

मैं अपनी जगह आ बैठा और फिर अपनी उलझन में फँस गया। सोच रहा था—कलकत्ता लौटना होगा, अपने आपको नालायक स्वीकार करना होगा, मामाजी के प्रवचन सुनने होगे, और, अत मे, फिर किसी दुकान पर सुबह से शाम तक बैठना होगा। दुकान पर बैठने का खयाल आते ही एकबारगी मर्जी हुई कि रेल से कूद पडूँ और कलकत्ते के बाज़ार की कीचड और पसीने की बदबू के बीच घुटकर मरने की बजाय यहा पहाड की हरी दूब पर नीले आकाश के नीचे प्राण दूँ।

पर इतनी शक्ति कहाँ थी मुझ मे! शक्ति के अभाव के कारण ही तो बाध्य होकर कलकत्ता लौटना पड रहा था। पिछले दो-तीन साल से मनमाना घूम रहा था, और अब आगे मेरा खर्च उठाने से मामाजी ने इनकार कर दिया था। हार मानने और दासता स्वीकार करने के अलावा कोई दूसरा चारा न था। शराब ने शरीर और मन को इतना दुर्बल बना दिया था कि अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता तक के लिए प्रयास करने का साहस न था।

एकाएक रेलगाडी की रफ्तार धीमी पड गई। बाहर कोई स्टेशन था। अपनी उलझनो के बीच याद आया कि मैंने एक जिम्मेदारी ले रखी है। नीचे उतरकर जनाने डिब्बे के पास पहुँचकर देखा कि हरी साडी वाली वह स्त्री अट्ठारह-बीस वर्ष की एक नवयुवती थी, जिसके गोरे पहाडी चेहरे पर एञ्जिन के धूएँ की एक काली परत छाई हुई थी।

"आपके भाई साहब मुझसे कह गए थे," मैंने कहा, "कि कालका पर आपका सामान उतरवादूँ। किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो कहिए?"

"मेरा जी मिचला रहा है," लड़की ने अपनी भूरी लटें समेटते हुए कहा।

मैंने नीबू सुझाया और वह तुरन्त ही बोल उठी, "तो फिर नीबू ही ला दीजिए।"

कालका स्टेशन पर उसका सामान उसके सुपुर्द कर विदा होते समय मैंने शिष्टता के नाते पूछा, "कहिए, अब तो तबीअत ठीक है न ?"

"नही। सिर मे बहुत दर्द हो रहा है।" वह प्लेटफॉर्म की एक लम्बी बेंच के एक छोर पर अन्यमनस्क किन्तु अनपेक्ष्य भाव से बैठी थी।

"एस्परीन ला दूँ ?" मैंने पूछा।

"कुछ भी ले आइये," उसने अधिकारपूर्ण आग्रह के साथ उत्तर दिया।

पहली बार नीबू और इस बार एस्परीन की खोज में मैं निकल पडा, और मुझे लगा मानो मै उन गृहस्थ लोगो की तरह हूँ जो हर रोज़ सुबह हाथ में झोला लेकर तरकारी लेने निकलते हैं।

एस्परीन की गोली एक घूंट पानी के साथ उतारती हुई वह बोली :

"दिल्ली की गाडी कब जायगी ?"

"थोडी ही देर में जाने वाली है।"

"क्या आप मेरे लिए भी टिकिट खरीद लाएँगे ?"

"दिल्ली तक का ? तीसरे दर्जे का ?" मैंने पूछा।

उत्तर में क्लांत युवती ने एक ऐसी दृष्टि से देखा जिसमें भर्त्सना और याचना, कुटिलता और सरलता का कुछ ऐसा अद्‌भुत सम्मिश्रण था कि मै अज्ञता की मूर्ति बना खडा रहा। आखिर वही बोली :

"मेरी तबीअत बहुत खराब है। आप मुझे अपने पास बिठा ले तो बेहतर हो।"

"बहुत अच्छा," मैंने कहा।

लेकिन फिर भी मुझे वही खडा देखकर वह अपनी वाणी में समस्त

क्लाति और व्यथा समेटकर बोली ·

"अपने पास से टिकिट ले आइये न ! मैं सन्दूक खोलकर बाद में पैसे दे दूँगी।"

कालका से दिल्ली तक हमने एक साथ सफर किया। वह मेरे बिस्तरे पर मेरे कम्बल मे लिपटी पड़ी थी और मैं उसके चरणों में सिमटा, उनींदा बैठा था।

इसी तरह सारी रात गुज़र गई। आखिर, कम्बल में कुछ खलबलाहट मची और वह उठ बैठी। आँखे मलते हुए उसने पूछा, "कितने बजे हैं ?" और फिर अपने अस्तव्यस्त बालों को ठीक करती हुई बोली।

"आप सारी रात मेरे कारण सो न सके। अब सो जाइये।"

"तबीअत तो ठीक है न ?" मैंने पूछा।

"अच्छी है।" पहली मुस्कराहट के साथ अपनी सुन्दर दन्त-पक्ति प्रदर्शित करती वह बोली और लम्बी बातचीत के इरादे से मेरे पास सट कर आ बैठी।

पूछने लगी मै कहाँ रहता हूँ, क्या करता हूँ, दिल्ली कितने दिन ठहरने का इरादा है, वगैरह। दिल्ली मे उसकी फूफी रहती थी और वही उसे स्टेशन पर लेने आने वाली थी।

"अगर फूफी न आईं तो ?" मै पूछ बैठा।

"आप मुझे उनके घर पहुँचा दीजियेगा," हँसकर वह बोली।

मुश्किल यह थी कि उसे अपनी फूफी के घर का पता तक न मालूम था। वह सिर्फ इतना जानती थी कि घर का नाम 'मोती-मञ्जिल' है। मैं चिन्तित हो उठा क्योंकि सिर्फ मकान के नाम से किसी भी शहर मे किसी का पता लगा लेना असम्भव है। पर उसने इस समस्या को अति नगण्य अथवा मेरे अवलम्ब को अति समर्थ समझ रखा था। वह मुस्कराती ही रही।

दिल्ली स्टेशन आ पहुँचा और कुछ देर इधर-उधर झाँकने के बाद उसने निर्विकार भाव से घोषणा की, "फूफी नहीं आई।"

इस तरह की जिम्मेदारी मैंने कभी न उठाई थी। एकाएक अपने को बोझिल पाकर मैं खिन्न हो उठा। समझ मे न आता था क्या करूँ ? आखिर उसने ही रास्ता सुझाया, "किसी होटल में चलकर पहले नहा-धोले, फिर निकलेंगे फूफी को ढूढने।......और मैं तो कहती हूँ शायद कोई ताँगे वाला ही जानता हो 'मोती-मञ्जिल' कहाँ है।"

स्टेशन के बाहर की भीड में उसने अनायास ही मेरा हाथ थाम लिया और स्वय ही मुझे आगे ले चलने लगी। एक ताँगे वाले से पूछ ही बैठी, "मोती-मञ्जिल जानते हो ?"

मैं खीझ उठा, पर इससे पहले कि मैं अपनी खीझ प्रकट कर सकू, ताँगे वाले ने एक अजीब मुस्कराहट के साथ जवाब दिया, "हाँ, जानता हूँ।"

"कहाँ है यह जगह ?" मैंने हैरानी के साथ पूछा।

मोती-मञ्जिल चावडी बाजार की एक मशहूर इमारत थी और चावडी बाज़ार वेश्याओ का मोहल्ला था। पर मै यह मानने को हरगिज तैयार न था कि प्रकृति की गोद मे पली वह पार्वती चावडी बाजार मे बैठने के लिए पैदा हुई थी।

मुझे वेश्याओ से दिली नफरत थी, और मै समझता था कि वेश्या औरत नही होती। यदि वह अपनी मर्जी से इस पेशे मे आई है तो उसमें दिल है और न दिमाग। कसाई की दुकान मे लटके हुए बकरे की तरह वह सिर्फ मास का एक लोथडा है, अपने ग्राहको के लिए महज गोश्त की एक प्लेट है।

हम चावडी बाजार आ पहुँचे। मोती मञ्जिल के सामने घोडे की टापो को एक साथ रुक जाते सुनकर एक बूढी औरत ने ऊपर से झाँक कर पूछा, "किसको पूछते हो ? ठहरो, नीचे आती हूँ।"

लड़की ताँगे से उतरकर उस औरत के पास चली गई और वे दोनों आपस में बाते करने लगी।

मुझे एक साथ रात भर की थकावट ने आ घेरा। तुरन्त ही नहा

डालना मेरे लिए बहुत जरूरी हो गया।

कुछ देर बाद वह रुआसा मुँह लेकर लौटी और डबडबाई आँखो से बोली :

"फूफी तो यहाँ नही है। मैं यहाँ नही रहना चाहती। ये बुढियाएँ मुझे मार डालेगी।"

वह मेरी मिन्नते करने लगी, न जाने क्या-क्या उसने कहा, और, अन्त मे, कसकर मेरा घुटना पकड लिया।

मेरे अपने जीवन मे कभी कोई इस तरह मुझसे पेश न आया था। कभी किसी ने इस तरह याचना-अभ्यर्थना न की थी। एकाएक मेरी अन्तरात्मा बोल उठी कि यदि यह अवसर मैने अपने हाथ से जाने दिया तो सारे जीवन, इस घटना की चुभन, अपनी भीरुता की कसक मुझे सताती रहेगी।

"किसी होटल में चलो," मैने ताँगे वाले को हुक्म दिया।

देवी आँसू पोछकर ताँगे मे आ बैठी और ताँगा चल पडा।

× × ×

मगला वेश्या बनने शिमला से दिल्ली आई थी। उसके विगत जीवन के बारे में कहने को अधिक कुछ न था। दरिद्रता मे पली अनाथ लडकी कटे हुए किन्ने की तरह लुढकते-लुढकते जवान हो गई। वह चाहती थी किसी ऐसे की छत पर गिरना जो उसे सँभालकर, ऊँचा-से-ऊँचा उडा सके। और इसीलिए चावडी बाजार छोडकर मेरे साथ चली आई।

उस दिन हम होटल के कमरे से बाहर न निकले। सारे दिन बैठकर परस्पर परिचय प्राप्त करने की कोशिश करते रहे। मंगला को अपने पिछले जीवन के लिए विशेष दु ख न था। उसका खयाल था कि प्रकृति सदा उसकी सहायता करती आई है। बचपन मे, जब उसका शरीर समर्थ न था और वह मल-मूत्र मे लिपटी एक कोने मे पडी रहती थी, उसे जागरूकता न देकर, और, जवानी में उसे एक सुन्दर शरीर प्रदान कर प्रकृति ने उसकी रक्षा की है।

उसे अपने शरीर पर गर्व था, और उसे विश्वास था कि उसका भविष्य निश्चित है। उसका यह अडिग विश्वास देखकर मुझे भी मानना पडा कि वह अपने शरीर द्वारा परमात्मा तक को पा सकती थी। आखिर, सदियो से शरीर को ही अपनी एकमात्र पूजी मानकर ही तो स्त्री मानव-जाति की सृष्टि करती आई है। मगला के उत्साह का मुझ पर प्रभाव पडे बिना न रह सका और मुझे लगा इतने आशावादी व्यक्ति के साथ जहन्नुम मे जाने पर भी कुछ न बिगड़ेगा।

लेकिन, उस रात जब मगला को मालूम हुआ कि मुझे उसके शरीर में रुचि नही है तो वह खिन्न हो उठी। केवल शरीर से ही, वास्तव मे, मै तृप्त न हो सकता था। मै "कुछ और" चाहता था, पर मैं यह न जानता था कि शरीर के ज़रिए भी यह "कुछ और" पाया जा सकता है। वह उसी दम, आधी रात को, मेरा साथ छोडकर जाने को तैयार हो गई। मैं कह सकता हूँ वह ड्रामा न था, हकीकत थी, क्योकि मैं मोहनियो के अभिनय पहले भी देख चुका था।

वह लडकी, जो सुबह मेरा घुटना पकडकर रो रही थी, इस समय इतने प्रचण्ड रूप में थी कि साक्षात् भवानी दिखाई देने लगी थी। उसका कहना था कि उसके शरीर को स्वीकार न कर जैसा मैंने उसका अपमान किया था, पहले कभी किसी ने न किया था। उसने भूख-प्यास, सर्दी-पाला, गाली-मार सब सही थी, लेकिन कभी किसी ने उसके अस्तित्व को मिटाने की कोशिश न की थी।

मै भी अपनी जगह से डिगना न चाहता था, और साथ ही मगला को दु:खी भी न देखना चाहता था। उसकी भी बहुत-कुछ ऐसी ही इच्छा थी। अत मे, हम दोनो ने कम-से-कम उस रात के लिये विराम-सन्धि करना तय किया।

दूसरे दिन सुबह हम होटल से बाहर निकले। मेरा इरादा मंगला के मन मे उसकी अपनी दुनिया से बाहर की चीजो के प्रति भी रुचि जगाना था। मैं उसे दिल्ली के इतिहास के बारे मे बता रहा था और वह चुप-

चाप सुनती चली जा रही थी। मैं उसे समझाने की कोशिश कर रहा था कि इतिहास के क्रम में एक व्यक्ति की निजी आकांक्षाएँ विशेष महत्त्व नही रखती।

एकाएक उसने मेरा हाथ पकड कर एक बगले की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया। वह एक छोटा-सा, साफ-सुथरा बंगला था जिसके लॉन पर, फूलो की क्यारियो के बीच, तीन-चार स्वस्थ, सुन्दर बालक खेल रहे थे, और उसके पास ही उनकी माँ स्वेटर बुन रही थी। पिता टहल-टहल कर अखबार पढ रहे थे।

"यह है असली जिन्दगी," वह बोली। "देखो, कितने अच्छे हैं यह लोग और कितना अच्छा मकान है इनका !"

मैं कुछ न बोला और उसने मेरा हाथ छोड दिया।

दरअसल, वह माँ थी और सृजन करना चाहती थी। और उसके विपरीत, मै एक जिदा लाश था जो अपने जनाजे मे बन्द रहकर ही हिफाजत महसूस करता था। मैंने शुरू से ही अपने चारो ओर दीवार खडी कर रखी थी जिसमे मैं बाहरी आवाज या रोशनी न आने देता था। मगला ने आकर उसमे सेंध लगा दी। मैने सेंध को बन्द करना चाहा। मैं फिर शराब पीने लगा।

उस रात मैं अपने साथ शराब की एक बोतल लाया था, और एक गिलास में थोडी-सी डालकर पीने लगा। मगला को कुछ कपड़े वगैरह भी दिलाये थे, जिन्हे सभालकर रखने मे वह व्यस्त थी।

"तो तुम भी पीते हो ?" उसने मुडकर एक नजर देखा और फिर अपने काम मे लग गई। उसकी आवाज मे अचानक एक दूरी और उदासीनता आ गई।

"आओ, तम भी पीओ," मैंने कहा।

"मैं नहीं पीती।" इस बार उसकी वाणी मे स्पष्ट रोष और क्लेश था।

अत मे, आग्रह-अनुग्रह से वह मेरे सामने आ बैठी। पर शराब उसने

न पी। मुझे यह जानने में देर न लगी कि शराब से उसे सख्त नफरत थी। कहने लगी :

"असल मे, सब कुछ मेरी किस्मत का ही कसूर है। मुझे सब एक जैसे ही मिलते हैं।"

जो कुछ उसने कहा था उसके अपने अनुभव पर आधारित था। पर जब तक मेरे और उसके बीच शराब की बोतल रखी रही, वह ज्यादा बोलने को तैयार न थी। आखिर मैंने मद्य और मंगला के बीच मगला को तरजीह दी और बोतल हटा दी।

वह अपनी-बीती सुनाने लगी। तीन वर्ष पूर्व उसके गाँव से कुछ दूर हटकर एक पक्की सडक बन रही थी। एक ओवरसीयर ने वही अपना खेमा डाल रखा था। वह पढा-लिखा आदमी था और कभी जोर से न बोलता था; मजदूरो तक को कभी डॉटता-फटकारता न था। उमके चेहरे पर हमेशा मुस्कराहट खेलती रहती थी और वह अपने सारे काम इस मुस्कराहट से ही करवा लेता था। मगला को उसकी अत्यधिक सज्जनता और शालीनता ने ही आकृष्ट किया था और एक दिन उसकी मुस्कराहट से खिचकर वह उसके खेमे में चली गई।

ओवरसीयर ने मगला को शराब पीने के लिए बाध्य कर दिया। जितनी देर में मंगला ने एक घूट पी थी, वह आधी से ज्यादा बोतल खत्म कर चुका था। और फिर बकने लगा—ऐसी गन्दी बातें कि जिन्हें सुनकर बुरी-से-बुरी वेश्या भी चीत्कार उठती। प्यार करने का उसका अजीब तरीका था, गालिया दे-देकर मगला को नोचने-खसोटने लगा। और अत में, अपनी जलती सिगरेट मगला के नगे कधे पर दबादी, मानो वह एशट्रे हो। मुझे याद है मगला ने मुझे अपना कधा खोलकर दिखाया था। बाद में, जब कभी भी मैंने वह दाग देखा मेरा मन चिहुंट उठा।

मुझे यह घटना सुनकर सचमुच दुख हुआ था, लेकिन न जाने किस आंतरिक विवशता के कारण मैं दु:ख प्रकट न कर सका। मैंने सिर्फ इतना ही कहा :

"पीने के बाद आदमी अपने असली रूप मे आ जाता है।"

"अगर यही बात है तो लो पीओ," कहकर उसने नीचे रखी हुई बोतल उठाकर मेज़ पर रख दी। "यह भी देखलू कि तुम्हारा असली रूप क्या है!"

मै अपने असली रूप का प्रदर्शन करने के लिए तो शराब नही पीता था लेकिन मेरी धारणा थी कि नशा हो जाने के बाद मनुष्य के अचेतन मानस के द्वार खुल जाते हैं और उस अधकार मे समाए देव-दानव स्वय बाहर निकल आते हैं।

मै कुछ देर चुपचाप बैठा रहा। पता नही क्यो गिलास उठाने मे अकुलाहट-सी महसूस होने लगी। मगला की उपस्थिति मे शराब पीना मेरे लिए एकाएक अरुचिकर हो गया।

"पीयो न!" उसने मुस्कराते हुए फिर ललकारा, मानो मुझे मात दे चुकी है।

मैने एक झटके के साथ बोतल उठाकर मुह से लगा ली। एक ही बार मे आधी से ज्यादा बोतल खत्म कर मैं उठ खडा हुआ, तभी धरती डगमगाई और लडखडाकर मै गिर पडा।

मै पिछले कई वर्षो से शराब पीने का आदी था, पर कभी भी एक साथ इतनी ज्यादा न पी थी। हर रोज एक नियत मिकदार में शराब पीने वाले को नशा नही होता, महज थोडी-सी फुरफुराहट होकर रह जाती है। लेकिन उस दिन सब पुरानी सीमाओ का उल्लघन कर, दरअसल, मैं अपने असली रूप मे आ गया।

मैं धरती पर पडा था और उठने की मुझ में ताकत न थी—यही तो था मेरा असली रूप।

मुझे अपने आप पर दया आने लगी। मुझे लगा मेरा अत आ चुका। लोग कहेगे—परदेश मे एक होटल के कमरे मे एक वेश्या के साथ वह पाया गया। उसने इतनी ज्यादा पी ली थी कि मर गया। इसी को कहते

हैं कुत्ते की मौत। और वाकई मैं टांग टूटे कुत्ते की तरह सिसकने और कराहने लगा।

मुझे इतना ही याद है कि मंगला ने सहारा देकर मुझे उठाया और पलँग पर लिटा दिया। मैंने उसकी कमर जकड ली और उसके सघन-स्तनों में मुँह देकर बच्चो की तरह बिलख उठा।

× × ×

दूसरे दिन, करीब चौबीस घटे बाद, होश आया। मगला ने बताया मेरी तबीअत बहुत खराब है, मुझे बुखार आ रहा है, डाक्टर इजेक्शन दे गया है।

मैं दस दिन तक बीमार पडा रहा और मगला तीमारदारी ~~करती~~ रही। मेरा खयाल है कि हर आदमी जानबूझ कर बीमार पडता है। बीमारी उसकी आतरिक आवश्यकता की अभिव्यक्ति है। कम से कम मेरे लिए वह बीमारी एक वरदान बनकर आई थी।

मैं चुपचाप निश्चल भाव से पडा रहता। बोलने-चालने और सोचने-समझने की कतई कोई इच्छा न होती। मुझे अपनी आकाक्षाए और असफलताए कुछ याद न आती। भविष्य की चिंता और किसी भी दिशा में प्रयास करने की आवश्यकता का मानो मेरे लिए अस्तित्व ही न था। भावना, कामना, वासना, सबसे मै रिक्त हो चुका था।

अब मुझे हर चीज नई-सी दिखाई देने लगी। होटल के कमरे की खिड़कियों में लगे मैले परदों के बेल-बूटे चित्ताकर्षक प्रतीत होने लगे। खिड़की में से नजर आने वाले नीले आसमान का टुकडा ऐसा लगा मानो मैंने अपनी जिन्दगी मे पहली बार आसमान देखा हो।

मेरे साथ, जहा-जहा भी मै गया हूँ, किताबे हमेशा ही रही हैं, लेकिन कभी भी मै उन्हे पूरी तौर पर पढ न पाता था। सब विषयों की पुस्तके आजमा कर देख चुका था। पुस्तक खरीदते समय मुझ में उत्साह होता और फिर बड़े चाव से उसे पढ़ना शुरू करता पर कुछ समय बाद सब-कुछ निरर्थक-सा लगता, ऐसा लगता मानो जो कुछ मैं पढ़ रहा हूँ

उससे मेरा अपना कोई वास्ता नही ।

शिमला से लौटते समय भी मेरे पास कुछ पुस्तके थीं, और अब मैने उन्हे होटल के बरामदे में एक आराम कुर्सी पर लेटकर देखना शुरू किया । सामने की दूसरी कुर्सी पर बैठी मगला मेरे लिए अपनी पसन्द से लाए हुए ऊन का स्वेटर बुनती रहती । सच कहता हूँ पुस्तक पढने का वह मेरा अनोखा अनुभव था । जिन वाक्यो और पृष्ठो को मैं पहले एक-दो बार यों ही पढ गया था, अब उनमे एक नया अर्थ, एक नया संदेश मिलने लगा, जो पहले समझ में न आता था, अब स्पष्ट हो गया । सामाजिक समस्याएँ, जिनसे मैं विमुख हो चुका था, अब मेरे लिए बहुत कुछ तात्कालिक आवश्यकताएं बन गईं ।

कुछ दिनो बाद मैं बाहर टहलने भी जाने लगा । मगला सदा साथ होती । अक्सर सुबह जमुना किनारे एक मुगलकालीन बाग में हम जाया करते थे । मगला मेरी निस्बत ज्यादा पेडो के नाम जानती थी । हर पेड को दिखा-दिखा कर कहती, "यह बलूत है, यह शहतूत, और यह तो तुम जानते ही होगे, आम का पेड है ।" जब कभी मै किसी पेड का नाम पूछता और वह न बता सकती तो उसे बहुत दुःख होता, और जब तक किसी माली से उसका नाम न जान लेती उसे चैन न पडता ।

हम लोग उस बाग के प्रायः सभी मुख्य पेडो से परिचय प्राप्त कर चुके थे, पर एक दिन हमने एक नया पेड़ देखा ।

"वह देखो," मगला बोल उठी, "वह देखो ।"

सब पेडो से छिपकर, बाग की पिछली दीवार के सहारे वह खड़ा था—देवदार का पेड़ । और एक दूसरा, कम आयु वाला, सफेद खाल का पेड—जिसका हम दोनो नाम न जानते थे—उस देवदार से ऐसे संगीत-मय ढग से लिपट गया था मानो अनन्त प्रेमालिंगन का मूर्त्त सन्देश दे रहा हो ।

हम दोनों एक टक खड़े उन पेड़ों को देखते रहे, और न जाने कब कैसे हम दोनों के हाथ आपस में जुड गए । पहले किसका हाथ बढा, यह

जीवन के अंत तक हम न जान पाए, जानने की जरूरत भी न थी। मगला का सिर मेरे कंधे पर आ गया, और उसी तरह बहुत देर तक हम उन पेडों को देखते रहे।

वह रविवार का दिन था और सुबह की सुनहरी धूप मे हर रोज से ज्यादा चहल-पहल नजर आ रही थी। मेरा मन होटल वापस जाने को न हुआ, और हम बाग से निकलकर घूमते-घूमते सिविल लाइन्स के उसी बगले के सामने चले आए जिसे देखकर एक दिन मगला ने कहा था, 'यह है असली जिन्दगी। कितने अच्छे हैं यह लोग और कितना अच्छा मकान है इनका !'

तब मै कुछ न बोला था और मगला ने आहत होकर मेरा हाथ थोड दिया था। लेकिन उस रोज मैंने खुद मगला का हाथ पकडकर कहा, "याद है यह बगला ?"

मगला कुछ न बोली, लजा गई।

उसी समय बगले का दरवाजा खुला और तीन-चार खेलते-खिल-खिलाते बच्चे निकल पडे। पीछे से माँ कल्याणी भी पूरी साज-सज्जा के साथ बाहर निकल आई। वे कही घूमने जा रहे थे।

धीरे से मैंने मगला के कान मे कहा, "लेकिन आज बाप नदारद है।"

कनखियो से देखती हुई वह बोली, "माँ और बच्चो के बीच बाप के लिए कोई जगह भी तो नही।"

और उसी समय मुझे ज्ञात हुआ कि स्त्री मूल रूप मे माँ है, जग-दम्बा है, और पुरुष उसका स्वामी नही, उसके सृजन-कार्य मे केवल एक चाकर है।

× × ×

होटल के कमरे मे ही एक दिन हमारा विवाह भी होगया। सचमुच, मैंने सोचे-विचारे बिना ही मगला को सदा के लिए अपना लिया। सोचने-विचारने की चीज भी तो वही है जो मन को न भाती हो, और मुझे

तो उस समय सारा ससार प्रिय लग रहा था। मेरे व्यक्तित्व का कुछ ऐसा विस्तार हुआ था कि वह जीवन के सभी अगों को छूने लगा था। शायद प्रेम मे ऐसा ही होता हो।

लेकिन, आज जब मै सोचने बैठा हू कि शादी के बाद मैंने क्या किया तो देखता हू कि दरअसल कुछ नही किया। कहने को कई छोटी-मोटी बाते कही जा सकती हैं, जैसे कि मैने बहुत ज्यादा किताबे पढी और मैं स्वय भी एक वक्ता और एक लेखक बन गया, कि मेरे नाम से देश के बहुत से लोग परिचित हो गए और पत्र-पत्रिकाओ मे मेरे चित्र प्रकाशित होने लगे। लेकिन इन सब बातो मे कुछ तथ्य नजर नही आता। यह सुख का स्वाग था, तुच्छता का स्तर था, जिस पर कभी किसी को कुछ नही मिला।

बहरहाल, तब मै खुश था। मंगला को पढते-लिखते, पनपते देख मुझे स्वय अपना जीवन सार्थक प्रतीत होने लगा था। अब मै दिशा-भ्रष्ट व्यक्ति न था, एक जिम्मेदार आदमी था। अब मै केवल एक स्त्री का पति ही नही, एक पुत्री का पिता भी था।

× × ×

पन्द्रह वर्ष यो ही गुजर गए। पन्द्रह वर्ष भी इसलिए याद हैं क्योकि तब सदाशा पन्द्रह वर्ष की थी। हर साल हम सदाशा का जन्मदिन मनाते थे और उसकी पन्द्रहवी वर्षगाठ तो न जाने क्यो बहुत धूमधाम से मनी थी। सुबह से ही शुभचितको की भीड और सौगातो का ढेर लगने लगा। शाम होते-होते खाने-पीने और गाने-बजाने के शोरगुल से सारा मकान गूंज उठा।

मैं बाहर लॉन पर खडा कुछ मित्रो से बाते कर रहा था कि हमारे एक अन्य मित्र, प्रोफेसर जैन, आ गए। उनके हाथ मे रगीन फीतों से बँधा एक बक्स था जिसे सदाशा को देने के लिए वह आतुर दिखाई दे रहे थे। मैने उनसे स्वयं सदाशा को ढूंढ लेने के लिए कहा। कुछ देर बाद मै भी किसी काम से अन्दर आया और सदाशा के कमरे के सामने

से गुजरते हुए मैने उनकी आवाज सुनी।

"अंकिल 'किस' नही करोगे ?"

"नही," जैन साहब ने भर्राई हुई आवाज मे कहा, "अब तुम बडी हुई।"

"तो मुझे आपका उपहार स्वीकार नही," सदाशा का उत्तर था।

"लो बाबा," जैन के इस वाक्य के साथ ही चूमने की आवाज आई।

दूसरे क्षण ही जैन साहब घबराए हुए कमरे से निकले, और मुझे देख कर अटपटाते-से चल दिए। पीछे से सदाशा की हँसी सुनाई दी। उस हँसी ने एकाएक मुझे बेचैन बना दिया, मेरी खुशी के गुब्बारे मे एक काटा चुभो दिया।

ऐसी ही हँसी एक बार मैंने पहले भी सुनी थी। लेकिन जब मैं कुछ समझ न पाकर चुप हो गया था। मै न जानता था कि वह अदृश्य का रहस्य जानने वाली पौराणिक काल की किसी महामाया का सकेतात्मक हास था।

तब वह नौ-दस वर्ष की थी। एक दिन मै बरामदे में बैठा एक पत्रिका देख रहा था और वह सडक की तरफ झुकी खडी थी। अचानक बोल उठी, "देखो, बाबा, देखो, यह तो चल दिया।"

एक बैलगाड़ी पर एक विसायती की दुकान का सारा सामान लदा था और उस पर 'नोवल्टी स्टोर्स' का साइनबोर्ड रखा था। बैलगाड़ी के पीछे दुकान का मालिक चुपचाप चला जा रहा था।

मै उसे जानता था। वह हमारे मोहल्ले में ही रहता था। बच्चो से उसे बहुत प्यार था और शायद इसीलिए उसने वह दुकान खोली थी जिसमें ग्राहक ज्यादातर बच्चे हो। उसकी बीवी महीने में एक बार बाल-भोज करती और अगर कभी कोई बच्चा बीमार पड जाता तो वे दोनों उसे देखने जाते थे। बिचारो का अपना कोई बच्चा जो न था।

उस रोज़ एकाएक इस तरह दुकान छोड कर उसे चले जाते देख मुझे आश्चर्य हुआ, पर सदाशा हँस पड़ी, एक ऐसी अद्भुत हँसी जिसका

अर्थ मैने बहुत दिनो बाद जाना ।

एक दिन मुझे नोवल्टी स्टोर्स वाले का पत्र मिला । वह पत्र क्या था मानो किसी अकेले गिरजे मे एक पादरी के सामने घुटने टेक कर अपराध स्वीकार किया जा रहा हो । उसने लिखा था कि सदाशा अपने बाल-सौन्दर्य के कारण उसे विशेष प्रिय थी, और हर रोज उसकी दुकान मे कुछ न कुछ खरीदने आती थी । एक दिन दोपहर के सन्नाटे मे वह आई और सशरीर वार्तालाप करने लगी । दुकानदार ने एक ऐसी भीषण उत्तेजना अनुभव की जैसी कि पहले कभी न की थी । आखिर, उसने सदाशा को डाट कर दुकान से बाहर निकाल दिया ।

अपमानित सदाशा बाहर चली आई और दुकानदार अपना धडकता दिल काबू कर ही पाया था कि एक ईंट उसकी दुकान में जा गिरी । शोकेस का काच चूर-चूर हो गया, सिन्दूर और सुगधित तेल की शीशिया टूट कर बिखर गईं ।

दोपहर भर सदाशा फिर न दिखाई पडी पर शाम को अपना ध्वसात्मक कार्य निहारने आई । दुकानदार ने उसे देखा । वह उसका हाथ पकड कर अपनी दुकान में ले आया और एक बेत दिखा कर डराने-धमकाने लगा ।

सदाशा एकाएक इतनी ज़ोर से चिल्लाई कि दफ्तर से लौटते हुए कुछ बाबू अपनी साइकिले बाहर पटक कर धडधड़ाते हुए दुकान के अन्दर घुस आए । थोडी ही देर में अच्छी-ख़ासी भीड़ जमा हो गई ।

सदाशा ने रोते हुए बताया, "भाईसाहब जबर्दस्ती, मुझे प्यार करना चाहते थे । मै भागने लगी तो मारने लगे ।"

दुकानदार का वर्षों का करा-धरा एक मिनिट में मिट्टी में मिल गया । उस पर सब तरफ से लात-घूंसे पडने लगे । दुकान की सब चीज़ें तितर-बितर हो गईं और वह अपना सिर पकड कर चुपचाप सब सहता रहा । उसने दुकान फिर न खोली और जब खोली तो अपना सारा सामान ले जाने के लिए ।

बिसायती का पत्र पढकर मै परेशान हो उठा। समझ मे न आता था कि वह लडकी जो एक स्वस्थ, नैतिक वातावरण में पली थी किस तरह ऐसे पेश आ सकती थी ? लेकिन, आखिर मै एक बाप था। मैंने सोचा सदाशा अभी छोटी है, नासमझ है, उससे ज्यादा पूछताछ करना गलत है। जो कुछ बिसायती ने लिखा था, उससे तो वह खुद भी कसूर-वार साबित होता था। और मै यह मानने को तैयार न था कि उसका कसूर कम और सदाशा का ज्यादा था।

लेकिन जैनवाली वारदात ने मुझे सदाशा के बारे में गभीरता के साथ सोचने के लिए बाध्य कर दिया। मैं सोचने लगा कि कही मेरे प्यार-दुलार ने ही तो लडकी को नही बिगाडा था ? दरअसल वह मुझे बहुत प्यारी थी। जब उसका चेहरा देखता तो जीवन आशामय प्रतीत होने लगता था। लेकिन उसकी आँखो में कुछ ऐसी चमक थी जिसे मै समझ न पाकर अक्सर उलझकर रह जाता था। और मगला को तो उन आँखों में निश्चित खतरा नजर आता था।

यह सब बाते मैंने मंगला से न कही, और तभी से मेरे और मगला के बीच एक फाँक पडने लगी। वह अब सुशिक्षित, सुसस्कृत नारी थी और उसकी शिक्षा-दीक्षा ने उसके मस्तिष्क को द्वद्वात्मक बनाने की बजाय निश्चित और दृढ बना दिया था। मैंने कभी उसे पशोपेश मे पड़ते या किसी बारे में सलाह लेते न देखा था, और न कभी अपने किसी फैसले पर रज करते ही पाया। उसने घर के कई नौकरो को महज इसी शक पर निकाल दिया था कि वे चोरी करते थे, हालाकि उसके पास कभी कोई निश्चित प्रमाण न था।

मैंने सोचा लडकी अभी मैट्रिक मे पढ रही है, साल भर बाद उसकी शादी कर देगे, और फिर सब ठीक हो जायगा। मगला का जीता-जागता उदाहरण मेरे सामने था।

× × ×

एक दिन सुबह नाश्ता करने बैठा था। मेरे बाई ओर बैठी मगला

टोस्ट पर मक्खन लगा रही थी, पर दाहिनी ओर की कुर्सी खाली थी। नाश्ता ठडा होने लगा और मैंने सदाशा को बुलाया। कुछ देर बाद वह आई पर अस्तव्यस्त-सी दिखाई देती थी—न बाल सँवारे हुए थे और न चेहरे पर वह ताजगी थी जिसे हर सुबह देखने के लिए मैं लालायित रहता था। मालूम होता था रात को वह पूरी तरह सोई न थी। मैं समझा इम्तहान नजदीक होने की वजह से पढाई पर जोर दे रही होगी। पर पढाई की बात चलाते ही उसने घोषणा की, "अब मैं स्कूल कभी न जाऊगी।" मगला ने और मैंने उसके इस हठात् निर्णय का कारण पूछा, पर उसने साफ-साफ कुछ न कहा।

उस रोज मुझे टाउन-हॉल में एक व्याख्यान देने जाना था। मैं पढने-लिखने के अपने कमरे मे चला आया और मगला को अलग बुलाकर मैंने कहा :

"देखो, लडकी से कुछ कहना मत। आज स्कूल न जाय तो कोई बात नही। पढाई के दबाव से तग आगई होगी।"

मै उस रोज फिर भाषण देने न जा सका। सदाशा के हैडमास्टर मिलने चले आए। वह सदाशा की शिकायत करने आए थे, ऐसी शिकायत कि जिसे सुनकर मैं पागल हो उठा; बुद्धि, विवेक सब कुछ खो बैठा।

सदाशा पिछले आठ वर्ष से उनके स्कूल में पढ रही थी, और इन आठ वर्षों में जितनी शिकायते उस लडकी की उन्होने सुनी थी उतनी अपने चालीस साल के अध्यापन-काल में किसी एक लडकी या लडके की कभी न सुनी थी। कभी वह किसी बच्चे को काट लेती या कभी किसी की किताब या कपडे फाड डालती थी। एक बार उसने एक बच्चे को अकारण ही काफी ऊंचाई से धक्का दे दिया, डेढ महीने तक उसकी टाग पर पलस्तर चढा रहा। यह सब मामूली बातें थी, मास्टर साहब ने कहा, जिन्हे लेकर मेरे पास आना उन्होंने कभी उचित न समझा था। चूँकि सदाशा पढने-लिखने मे होशियार थी और हमेशा स्कूल का काम कर लिया करती थी,

मास्टर साहब का खयाल था कि उसका शरारती मिजाज उसकी प्रखरता का द्योतक था। लेकिन जैसे-जैसे वह बडी होने लगी उसकी शरारतो का दायरा भी बढ़ने लगा। उसके सभी मास्टरो की शिकायत थी कि वह सब बच्चो को दूषित कर रही थी। उसने पिछले दो वर्ष मे न जाने कितने लड़के-लडकियो को गदी आदते सिखाई थी—यह स्वय उन लडके-लड़कियों ने अपने घर पढाने आने वाले मास्टरो के सामने स्वीकार किया था।

पिछले कुछ दिनों से, मास्टर साहब ने बताया, स्कूल में बड़ी क्लासो के इम्तहानो की तैयारी हो रही थी। छोटी क्लासो के इम्तहान हो चुके थे और उनके कमरे खाली पडे रहते थे। एक दिन हैडमास्टर साहब स्कूल का चक्कर लगाते हुए तीसरी जमात के एक कमरे के सामने से गुजरे और उन्होने देखा कि कुछ लड़के-लडकिया यौन-विषयक खोज मे लगे हैं, जिसकी प्रेरक सदाशा थी।

मास्टर साहब की आँखो में खून उतर आया और उनकी बेत फुकार उठी। उन्होने सब को पीटा और खूब पीटा। सब लडके-लड़कियो ने अपना-अपना दोष स्वीकार किया और बताया कि सदाशा ने ही यह खेल ईजाद किया था। मास्टर साहब ने सदाशा को भी बुरी तरह पीटा पर उसने न अपना दोष स्वीकार किया और न अस्वीकार। आखिर उन्होने यह तय किया कि उसे स्कूल से हमेशा के लिए निकाल दिया जाय। और यही फैसला सुनाने उस रोज़ वह मेरे पास आये थे।

मै आग-बबूला हो उठा। सदाशा को मार-मार कर मैने नीला-पीला बना दिया। मुझे याद है मार खाकर न वह रोई, न चिल्लाई। मेरे ही हाथ दुखने लगे और आखिर तग आकर मै अपने कमरे मे चला आया।

× × ×

उस रात मैने मंगला से सब-कुछ कह डाला और सब-कुछ विस्तार के साथ कहने में मेरा अपना क्षोभ कुछ कम हो गया, जबकि मगला सुनते-सुनते अपने मे सिकुड कर बन्द हो गई।

मैं फिर अकेला पड गया। मेरा तो खयाल था कि हम दोनो अपनी बच्ची की परवरिश करने में आपस में इतने घुलमिल गए थे कि दोनों का दरवाजा ही एक था, लेकिन मंगला की चुप्पी ने बीच में एक आड लगा दी।

मैं यह हालत बर्दाश्त न कर सकता था। अभी तक वह मेरे सब कामो में, मेरी उलझनों और तजवीजो मे पूरी दिलचस्पी लेती आई थी। उसके अपने संकल्पों की अनिवार्यता, मन की दृढता और विशेषत: मानवी समस्याओ को समझने की उसकी सहज अन्तर्दृष्टि से मैं सदा लाभ उठाता आया था।

दूसरे दिन मैंने मगला को फिर टटोला। पता नही क्यो वह मुझसे नजर न मिला पा रही थी। मैं खुद परेशान था और उसके इस अजीब-पन से तंग आ गया था।

"तुम्हे ताज्जुब नही हुआ, तुम्हें गुस्सा नही आया, तुमने लड़की से एक शब्द भी न कहा," मैं आहत होकर बोला, "और ऊपर से इस तरह पेश आ रही हो मानो जो कुछ हुआ है मेरी वज़ह से ही हुआ है।"

"नही, हुआ मेरी वज़ह से है। असल में कसूर मेरा ही है।" वह बोली और मेरे गले से लिपट कर रोने लगी।

मैंने मगला को पहले कभी इस तरह रोते न देखा था। उसकी आँखो में आँसू उमडे थे, लेकिन वे अधिकतर हर्ष और उल्लास के आँसू होते थे, या कभी-कभी साहस और त्याग के उदाहरण पढ-सुनकर भी झलक आते थे। लेकिन तब वह ऐसी रो रही थी मानो उसका सब-कुछ खत्म हो चुका है और उसे स्वयं अपनी दयनीय दशा पर तरस आ रहा है। किसी समझदार आदमी को रोते देखना भी एक अजीब अनुभव है।

मगला के दिल में यह बात घर कर बैठी थी कि सदाशा का वर्तमान रूप उसमे से ही निकला है, वही उसके लिए उत्तरदायी है। मैं जानता हूँ ससार की सब माताएँ अपने बच्चों की अच्छाई-बुराई के लिए

किसी हद तक अपने आपको ही जिम्मेदार समझती हैं, पर मंगला के उस विचार ने उसे इतना अधिक आतंकित कर दिया था कि वह यहा तक कहने लगी :

"भाग्य से लड़ने का यही फल होता है, जो मुझे करना था मैंने न किया, अब बेटी को करना पड रहा है।"

"यह तुम क्या कह रही हो", मैंने कहा, "मैंने आज तक तुम्हारी किसी बात में कोई दोष नही पाया। अगर दोष है तो मेरे लाड-प्यार का है जिसने लडकी को इस हद तक बिगाड दिया।"

"बात दोष की नही, भाग्य की है। तुम भूल गए लेकिन मुझे आज तक याद है कि जब सदाशा पेट में थी मैंने एक रात स्वप्न देखा था कि बच्चा जनने की बजाय मैने आग की एक लौ को जन्म दिया जिसने पैदा होते ही सबको स्वाहा कर डाला। मैं घबराकर उठ बैठी थी और मैंने तुम्हे सोते से जगाया था। पर तुमने कहा था, 'सपना देखकर डर गईं। सपना तो आखिर सपना ही है।"

मंगला को अपने इलहाम पर पूरा विश्वास था और उसकी इस धारणा को मै अंत तक दूर न कर पाया। पत्थर की लकीर की तरह उसका यह विश्वास उसके शरीर में नासूर बन कर उसे जिन्दगी भर सताता रहा।

लेकिन वह मेरी इस वात से सहमत थी कि विवाह स्त्री के जीवन मे सबसे बड़ी दुर्गति है और इसकी परिणति है बालजन्म। विवाह के बाद वह स्वय अपना पार्ट न चुन पाकर एक सुनिश्चित भूमिका में, माता की भूमिका में संसार के सम्मुख आती है। और मा कैसी भी हो, बुरी नही हो सकती।

मगला को सदाशा के बारे मे वे सब बाते न मालूम थी जो उस रोज मैंने उसे बताई थी। लेकिन, आखिर वह मा थी और अपनी बच्ची के बारे में उसके बाप से ज्यादा जानती थी। तभी तो उसे सदाशा की आंखो से हमेशा से एक खतरा नजर आता था। मगला ने उसे बचपन

मे अपनी हमउम्र लडकियो के साथ खेलते-लडते और बडी होने पर अपने बडो के खिलाफ षड्यन्त्र रचते और विद्रोह करते देखा था।

"याद है हमारे यहा मालिनी नाम की एक लडकी आती थी। सदाशा जितनी गोरी है उतनी ही वह काली थी, और तुमने एक दिन कहा था, 'श्यामा-गौरा की यह बडी सुन्दर जोडी है'।"

"लेकिन मालिनी ने अचानक आना बन्द क्यो कर दिया?" मैंने पूछा। "वह तो सदाशा की पक्की सहेली थी!"

"मैंने ही उसे घर आने से मना किया था," मगला ने कहा। "उसके बारे मे पडौस की कई औरतो से सुना था कि वह बदचलन थी।"

मालिनी एक सरकारी अफसर की बेटी थी और मगला उसकी मा को खूब अच्छी तरह जानती थी। एक दिन दोनो लडकिया अकेली बैठी बहुत घुलमिल कर बाते कर रही थी और मगला ने छिपकर उनकी बाते सुनी।

मालिनी कह रही थी कि कम उम्र के लडके नासमझ होते हैं। वे लडकियो को कुछ सिखाते नही बल्कि खुद सीखने के लिये उनसे मिलते हैं। बडी उम्र के आदमी जरूर कुछ सिखा सकते हैं, लेकिन जब लड़की उनसे मिलने की हिम्मत करती है तो वे समझ बैठते हैं कि लड़की पहले से ही सब कुछ जानती होगी।

मालिनी का खयाल था कि पुरुष को जानने से ही स्त्री का कद ऊंचा होता है। मोहल्ले के कई लोगो के उसने नाम लिए जिन्हें उसका दावा था, वह जानती थी। वे लोग जो मोहल्ले में इज्जतदार समझे जाते थे, उसके सामने निगाह न उठा सकते थे। मालिनी पर अब उनकी मूंछो का रोब न पड़ता था।

और सदाशा का भी यही दृढ मत था कि एक लड़की के लिए दुनिया में जो कुछ भी जानने-समझने लायक है, वह पुरुष है, बाकी सब बेकार, बेमतलब है। बड़ी-बडी किताबे पढने से ज्ञान नही मिलता, सिर्फ मर्द-मानुष को जानकर ही दुनिया फतह की जा सकती है।

मै नही समझता सदाशा ने यह बात इन शब्दो मे कही होगी, और न मुझे यही याद है कि मगला ने भी ठीक इसी रूप मे बात दोहराई थी। लेकिन अगर तात्पर्य यही था तो बात किसी हद तक वजनदार थी। सदाशा मे पुरुष को जानने की एक दुर्दम जिज्ञासा थी। उसे अननुभूत ज्ञान स्वीकार न था। वास्तव में, सत्य सदा ही अपनी निजी घटित अनुभूति से प्राप्त होता है, सैकिन्डहैण्ड नही मिलता। किसी ने सच ही कहा है कि सचाई दोहराने पर झूठ हो जाती है।

लेकिन तब मैं सदाशा की इस बात को इतनी वस्तुमुखी दृष्टि से देखने की स्थिति मे न था। तब वह मेरे लिए एक ऐसी गुत्थी थी जिसे जल्द से जल्द सुलझाने का मुझ पर भार था। मैं संस्कारो मे जकडा हुआ एक दुनियावी आदमी था और मेरे और मगला के सामने समस्या का एक ही तात्कालिक समाधान था—सदाशा का विवाह।

× × ×

हैडमास्टर की बाते सुन कर मैंने सदाशा को बुरी तरह पीटा था, और फिर तीन-चार रोज़ तक उसकी शक्ल न देखनी चाही थी। आखिरकार, दिमाग ठडा होने पर, कुछ खुल कर बाते करने के इरादे से मैंने उसे बुलवाया।

वह चुपचाप नीची नजर किए हुए मेरे कमरे मे चली आई। मैंने उस रोज़ उसे एक नई नजर से देखा यह वही लडकी थी जो मेरी गोद में खेलते-खेलते इतनी बडी हो गई थी कि अब गोद मे न समा सकती थी। उसकी बाहो मे न जाने कहा से, कैसे एक गोलाई आगई थी और उसके बाल-सुलभ मुख पर परिपक्वता की एक हल्की-सी झलक दिखाई देने लगी थी। नीचा मुह किए वह चुपचाप मेरे सामने बैठी रही। कुछ देर बाद धीरे से उसने अपना मुह ऊपर उठाया, और मैंने देखा कि उसके उजले मुख पर ठोड़ी के नीचे एक नीला दाग है। वह मेरी मार का ही फल था। उस दाग को देख कर एक क्षण के लिए मैं उसके सब पुराने अपराध भूल गया, और जी चाहा कि बच्ची को चूम लू। उस समय, कम से कम,

मै यह मानने को तैयार न था कि ईश्वर ने जिसे इतना अद्वितीय सौन्दर्य दिया है, वह बुरी हो सकती है ।

जिस समय मै मगला से पहले पहल मिला था, वह सदाशा से साल दो साल ही बडी होगी । वह तब बहुत सुन्दर थी, लेकिन उसकी सुन्दरता और सदाशा की सुन्दरता में एक मौलिक अन्तर था। आखिर, सुन्दरता मनुष्य के अपने चरित्र, या दूसरे शब्दो मे, नैतिक स्वभाव की ही तो अभिव्यक्ति है । मगला, अपने विवाह से पूर्व के सब अनुभवो के बाद भी अछूती, अकलक थी, और ऐसी स्त्री मे एक पति-धर्म पालन करने वाली स्त्री मे अपार रति होती है, जिसको नियत्रित, अनुशासित रखना ही उसका चरित्र अथवा उसका नैतिक स्वभाव अथवा उसका सौन्दर्य है ।

सदाशा का सौन्दर्य दूसरी तरह का था । उसके शालीन मुख, शात ललाट और छरहरे बदन में एक कोमलता थी न कि मासलता । हल्का नीलापन लिए हुए उसकी आखे और उसके सुनहरे लम्बे केश उसमें एक तपस्विनी की-सी तपन पैदा कर देते थे।

बहरहाल, शादी की चर्चा करने के लिए मैंने उसे बुलाया था। शुरू मे ही मैंने उससे कह दिया कि किसी पुरानी शिकायत की तहकीकात मैं नही करना चाहता था। मै चाहता था कि वह सब पुरानी बातें भूल कर नए सिरे से ज़िन्दगी शुरू करे । मैंने उसे समझाने की कोशिश की कि इन्सान ने हजारो वर्षो के अपने इतिहास मे बहुत पहले ही जान लिया था कि स्त्री के बिना पुरुष और पुरुष के बिना स्त्री अधूरी है। इस तथ्य की जानकारी ने ही परिवार को, और फिर परिवार ने सारी सभ्यता को जन्म दिया, परिवार ने मनुष्य के व्यक्तित्व का विस्तार किया, उसके एकाकी अस्तित्व को शृ खलाबद्ध कर एक सनातनता प्रदान की, वगैरह वगैरह ।

यह सब मैने विवाह के प्रश्न पर आने की गरज से कहा था। लेकिन वह पहले ही सब जान चुकी थी, क्योकि जब मैंने उसके विवाह की बात चलाई तो उसे कतई आश्चर्य न हुआ ।

मुझे डर था कि शादी करने से वह साफ इनकार कर देगी। लेकिन वह शादी करने को तैयार थी, मेरी हर बात मानने को राजी थी।

मैने अपनी उदारता मे यहाँ तक पूछा कि अगर शादी की उसकी इच्छा नही तो मै उसे मजबूर नही करना चाहता, अगर वह पढना चाहती है तो हम दिल्ली से बाहर उसकी पढाई का प्रबन्ध करवा सकते हैं।

"नही बाबा," वह बोली, "अब मै तुम्हे और माँ को ज्यादा सताना नही चाहती। जो तुमने सोचा है, तय किया है, वही करो।"

"अगर तू किसी लडके को चाहती है तो बता," मैंने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "मै उसी से तेरी शादी कर दूँगा।"

"नही, मै किसी को नही चाहती। बाबा, तुमने मुझे गलत समझा है, यही मुझे दु ख है," उसने उत्तर मे कहा और उसकी वे नीली आँखे चमक उठी।

"जो तू कह नही सकती वह भी मै समझता हूँ, और सब सोच-समझ कर ही मैने तेरे सामने विवाह का प्रस्ताव रखा है," मैने कहा। "विश्वास रख, मैं तेरे लिए बहुत अच्छा पति ढूँढूँगा।"

और उस दिन के बाद से सदाशा के लिए उपयुक्त वर ढूँढना मेरी सर्वप्रथम चिन्ता बन गई।

× × ×

सदाशा को विवाह के लिए राजी करना जितना आसान था, विवाह करना उतना आसान साबित न हुआ। मगला का खयाल था कि सदाशा को ऐसा आदमी चाहिए जो उसे अपनी मुट्ठी में रख सके, जबकि मेरे विचार में उसे सहानुभूतिशील और क्षमाशील पति चाहिए था। और यही से सदाशा को लेकर मेरे और मगला के बीच मतभेद पैदा होने लगा। लेकिन उस समय यह मतभेद मतलब न रखता था क्योंकि हम दोनों सहमत थे कि वर मिलने पर ही उसके गुण-अवगुण की विवेचना करना उचित होगा।

गर्मियो मे हम नैनीताल चले आए। सैर और तफरीह को आए हुए कई परिवारो से शीघ्र ही हमारा परिचय हो गया। कुछ दिन बाद ही सदाशा के कई उम्मीदवार पैदा हो गए। कोई इजीनियरिग का इम्तहान देकर आया था और उसका बाप सरकारी ठेकेदार था, कोई अपने बाप का इकलौता बेटा था और सात साल विलायत रह कर लौटा था; कोई हवाई फौज का अफसर था और शादी तय करने की गरज से ही छुट्टी लेकर नैनीताल आया था।

ज्यादातर लडको के परिवार भी उनके साथ आए थे और उनकी बहन-भतीजियाँ भी थी। जवान लडके-लडकियो की यह टोलियाँ दिन भर खाती-खेलती, घूमती-फिरती थी, और सदाशा उनके साथ बहुत मगन थी। जिस चीज को रोकने के लिए मैने और मगला ने उसकी शादी करना तय किया था, वही अब हम उसे अपना पति चुनने की इजाजत देकर करने दे रहे थे। लेकिन हम मजबूर थे और सदाशा की सद्बुद्धि पर निर्भर करने के अलावा हमारे सामने और कोई चारा न था।

धीरे-धीरे प्राय· सभी लडको और उनके परिवार के लोगो ने हमारे यहाँ आना छोड दिया और हमारी उम्मीदो पर पानी फिरता नजर आया। एक दिन मैने राय साहब से, जिनका इकलौता बेटा विलायत रह कर लौटा था, पूछा कि क्या कारण था कि उन्होने हमारे घर आना बन्द कर दिया? पहले तो वह बात टालने की कोशिश करते रहे, लेकिन मेरा सच्चा अनुरोध देख कर बात करने लगे। राय साहब और मै तय कर चुके थे कि अगर लडका-लडकी रजामन्द होंगे तो उनकी शादी कर देगे, और इसी भरोसे मैने रायसाहब को उस दिन टटोला।

कहने लगे उनका लडका सात साल विलायत रहा था और अगर शादी करना चाहता तो विलायत में बीसो शादियाँ कर सकता था। लेकिन वह चरित्रवान् था और सच्चरित्र स्त्री को ही अपनी पत्नी के

रूप में स्वीकार करना चाहता था। शुरू में उसे सदाशा अच्छी लगी थी, लेकिन बाद में उसका मन फट गया।"

"क्यो ?" मैंने पूछा।

"यह तो मै नही जानता," रायसाहब ने एक व्यंगात्मक मुस्कराहट के साथ कहा, "लेकिन एक दिन वह यह कह रहा था कि सदाशा भारतीय स्त्री के आदर्श के रूप में सीता, सावित्री को नही मानती बल्कि द्रोपदी को मानती है, क्योंकि उसके पॉच पति थे। जिस स्त्री के जितने अधिक पति हों उतनी ही वह सदाशा की निगाह मे ऊँची होगी," कह कर वह हँस पडे।

मै निरुत्तर होकर घर लौट आया। सदाशा को समझाना-बुझाना फिजूल था। मै चुप होकर बैठ रहा।

हमारे यहा आने वाले लडको में, लेकिन उनसे भिन्न विनय कुमार नामक एक युवक था। ज्यादातर लडके सिर्फ सदाशा से मिलने और उसे अपने साथ घुमाने ले जाने के लिए ही आते थे, लेकिन विनय मेरे पास बठ कर काफी देर तक बाते भी करता था।

स्त्री की स्वतंत्रता उसके लिए सैद्धातिक विषय न होकर एक स्वभावजन्य विश्वास था। सबसे बड़ी बात यह थी कि उसमे अहकार न था और इसलिए वह अपने सम्पर्क में आए हुए लोगो को 'साधन' न समझ कर 'साध्य' समझता था। उसे व्यक्ति मात्र के प्रति आदर था, और उसकी आत्मा दूसरो के लिए दु ख सहने में सतुष्ट होती थी।

एक दिन उसने विवाह का प्रस्ताव मेरे सामने रखा। मै उसे धोखा न देना चाहता था और इसलिए मैंने अपने परिवार के बारे में—किस तरह मुझे मंगला मिली और सदाशा ने क्या-क्या किया वगैरह सब बातें विस्तार के साथ उसे बता दी। सब कुछ सुनने के बाद उसने कहा :

"सदाशा जैसी भी है, मुझे स्वीकार है। मै आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि कभी भी किसी तरह की शिकायत लेकर आपके पास न

आऊंगा। सदाशा से मेरा विवाह कर आप सदाशा का नही, मेरा उपकार करेगे ।"

और उसी वर्ष, सर्दियो मे, हमने उन दोनो को विवाहसूत्र मे बाँध दिया।

× × ×

शादी के एक-डेढ महीने बाद सदाशा और विनय दिल्ली आए। मैं और मगला उन्हे स्टेशन लेने पहुचे। यह एक-डेढ महीने का अरसा हम दोनो के लिए बडी फिक्र का वक्त था क्योकि अगर दाम्पत्य-जीवन के बीजारोपण के बाद शुरू के कुछ महीनो मे पौधा जम जाता है तो भरोसा किया जा सकता है कि वह फलेगा-फूलेगा।

गाडी की खिडकी मे विनय का मुस्कराता चेहरा दिखाई दिया और उसके पीछे खडी सदाशा हाथ हिला रही थी। विनय ने गाडी से उतर कर मुझे और मगला को अत्यन्त श्रद्धा के साथ नमस्कार किया और मैने प्रेमार्द्र हो उसे गले से लगा लिया।

"सामान तो उतरवा लो," सदाशा ने अपने पति को आदेश देते हुए कहा, "और देखना मेरी अटेची कुली के हाथ में मत देना।"

"कहो बेटी, कैसी हो ?" मैने पूछा, "बरेली शहर कैसा लगा ?"

"बरेली ? शहर थोडे ही है," वह बोली।

"शहर नही तो और क्या है ?" मैंने हैरानी से पूछा।

"शहर तो है, लेकिन वहा कोई सोसायटी नही।"

"अब तुझे सोसायटी से क्या काम ? क्या पति-पत्नी की अपनी सोसायटी काफी नही," मगला ने दबी ज़बान में डाटते हुए कहा।

विनय सामान उतरवा लाया और हम सब घर की ओर चल दिए।

रास्ते में मैंने सदाशा से पूछा, "क्यो री, मेरी पिछली चिट्ठी का जवाब क्यो नही दिया ?"

"क्या जवाब देती ?" वह बोली, "सुबह उठकर नहाना-धोना और

खाना-पीना और फिर शाम को खाना-पीना और सोजाना—क्या यह सब भी लिखने की बाते हैं ?"

मै चुप हो गया। मैने कनखियो से विनय की ओर देखा और उत्तर मे वह मुस्करा दिया।

घर पहुचते ही मगला ने मुझे अलग ले जाकर कहा, "देखो ? लडकी कितनी मुहफट हो गई है !"

लेकिन विनय के हाव-भाव से मालूम होता था कि वह खुश था, और जब मैने सदाशा की आजाद तबीअत का जिक्र करते हुए बात छेडी तो कहने लगा

"सदाशा अभी उस घोडी की तरह है जो सीधी जगल से पकड कर लाई गई हो। वह चुप नही खडी रह सकती, लगातार छलॉग मारती रहना चाहती है। लेकिन मै इसे अपने हक मे एक खूबी समझता हूँ। यह खूबी ही है कि कोई उसे वरगला नही सकता, उस पर हावी नही हो सकता।"

मै विनय की इस बात से प्रभावित हुए बिना न रह सका। लेकिन मैने और मगला ने फिर भी सदाशा को यह समझाना जरूरी समझा कि उसे अपने पति का आदर करना चाहिए।

"लेकिन मैने अनादर कब किया है ?" वह पूछ बैठी।

"यह अनादर नही तो और क्या है," मगला ने कहा, "कि तू विनय से इस तरह पेश आती है जिस तरह नौकर से पेश आया जाता है। वह तेरा पति है, क्या तू यह नही जानती ?"

"माँ, तुम मुझे हमेशा गलत क्यो समझती हो ? मैने कभी उनका अनादर नही किया। यह तुम उनसे खुद पूछ देखो।"

"जो मै अपनी आखो के सामने देख रही हूँ, उसमे पूछताछ की क्या जरूरत ?" मगला ने गुस्से और हैरानी के साथ कहा।

"लेकिन अगर वह मेरे व्यवहार मे अनादर नही पाते तो तुम क्यो परेशान होती हो ?"

मगला निरुत्तर हो गई। मेरा भी यही ख्याल था कि अगर मिया-बीवी राजी हैं तो हमे उनकी जिन्दगी मे दखल देने की क्या पडी थी ?

विवाह के साल-डेढ साल के बाद तक वे दोनो हमे चिट्ठियाँ लिखते रहे और दो-तीन बार दिल्ली भी आए। उनकी बातचीत और तौर-तरीके देख कर हम इसी नतीजे पर पहुँचे कि उन दोनो मे विपमनाओ के बावजूद भी एकता है।

बरेली मे विनय का अपना एक निजी मकान था, जिसमे वह अकेला ही रहता था। उसके माता-पिता बचपन मे ही मर चुके थे, और मेरा ख्याल था कि उसमे घोर अकेलापन था जिसे दूर करने की कोशिश मे ही उसने विवाह किया था।

यद्यपि बरेली मे उसका खासा अच्छा व्यापार था, शादी के डेढ साल बाद वह शहर छोडकर अपने पूर्वजो के गाँव चला आया और खेती करने लगा।

मै इन्ही दिनो एक बार उसके गॉव पहुँचा। वह गॉव लखनऊ जाने वाली सडक के किनारे था। बस से उतरते ही कुछ ऊँचाई पर एक नया-सा, गुलाबी मकान दिखाई दिया और पूछने पर मालूम हुआ कि वही विनय का मकान था। दोपहर के सन्नाटे मे खेतो को पार करता हुआ, तरतीब-बार लगी क्यारियो के बीच होता हुआ मैं उस ऊँचे मकान के अन्दर चला आया।

सदाशा उस समय अकेली आराम कुरसी पर लेटी थी। मेरे आने से उसका पालतू कुत्ता भूँक उठा था, पर वह उसी तरह बेखबर पडी रही। कुत्ते के दुबारा भूँकने पर पास के कमरे से विनय की अलसाई हुई आवाज सुनाई दी। वह दिन भर खेत में मेहनत करने के बाद थक कर सोया था और कुत्ते की आवाज़ सुन फौरन जाग उठा, जब कि सदाशा, जो कि दिन भर आराम से लेटी रहती थी, किसी ऐसे दिवा-स्वप्न मे खोई हुई नजर आई कि न कुत्ते और न अपने पति की आवाज उसे जगा सकी।

विनय उठ कर बाहर आया और बडे उत्साह के साथ उसने मेरा स्वागत किया। सदाशा ने भी गर्दन उठा कर एक फीकी मुस्कराहट से मेरी ओर देखा।

"कहो बेटी, कैसी हो ?" मैने पूछा।

"अच्छी हूँ, बाबा," वह बोली।

उसकी मुस्कराहट ही सिर्फ फीकी न थी, उसके चहरे का रग भी फीका पड चुका था मानो उसे एनीमिया हो। इस बारे मे तुरन्त ही पूछ-ताछ करने का विनय ने मुझे मौका न दिया। वह मेरे आने से इतना खुश था कि खुद ही बोलता रहा और मेरी बॉह पकड कर मुझे अपना साम्राज्य दिखाने लगा। उसका साज-सरजाम देखकर मै इस नतीजे पर पहुँचने के लिए बाध्य था कि वह गॉव मे आजीवन रहने आया था। मैने जानना चाहा कि आखिर बरेली में अपना अच्छा-भला काम छोड कर वह यहॉ क्यो चला आया है ?

"जो कुछ मै यहाँ बनाने की कोशिश कर रहा हूँ, क्या वह बरेली के काम से ज़्यादा अच्छा नही ?" वह कहने लगा, "अभी आपने देखे नही हैं वे चन्दन के पेड जो मैने यहॉ बोए हैं। जब वे बडे होगे तो हवा के हर झोके के साथ इस मकान मे चन्दन की खुशबू आएगी। और सब से बडी बात तो यह है कि मै नही चाहता कि मेरे बच्चे शहर की तग जिन्दगी मे पले। आपको शायद मालूम नही कि मै शीघ्र ही पिता बनने वाला हूँ।"

विनय का अन्तिम वाक्य सुन मै कृत्कृत्य हो उठा। आखिर मेरी और मंगला की साध पूरी हुई, हम गगा नहाए।

उस शाम, सूरज डूबने से कुछ पहले, मै सदाशा को लेकर बाहर निकला। विनय ने अपने मकान के पिछवाडे कई शीशम के पेड डलवा रखे थे और वह बहुत सारा फर्नीचर बनवा रहा था। तरह-तरह की मेज, कुर्सियो और अलमारियो के बीच, जिन पर रग-रोगन हो रहा था, मैने एक नए ढग का सुन्दर-सा पालना देखा, और सदाशा से मजाक

करते हुए कहा, "यह पालना तो तूने ही बनवाया होगा।"

सदाशा ने बात टाल दी। बोली, "आओ बाबा, बाहर चलें। सडक किनारे चले, वहाँ बडा अच्छा लगता है।"

कोलतार की वह काली सडक मोटरगाडियो के पहियो की अनवरत रगड से चमक उठी थी, और डूबते सूरज की रोशनी मे ऐसी लग रही थी मानो उस पर सान चढ गई हो।

"बाबा, मुझे यह सडक बहुत अच्छी लगती है," गाँव की जिन्दगी छिछले तालाब के बन्द पानी की तरह है, और यह सडक उग नदी की तरह है जो सागर मे जाकर मिलती हो।"

उसी समय एक लॉरी सध्या की शाति भग करती हुई, भडभडाती हुई चली गई। मुझे ग्राम-जीवन की सध्याकालीन सुषमा के प्रति मोटर-लॉरी के पहियो से पैदा हुई चीत्कार एक बलात्कार प्रतीत हुई।

"सडक बिचारी को," मैने कहा, "दिन-रात कितना अत्याचार सहना पडता है!"

"जिसे तुम अत्याचार कहते हो, वही तो इसका जीवन है," सदाशा बोली, "देखते नही, इसी अत्याचार से तो सडक पर एक चमक आगई है, यही तो इसकी आबरू है, यही तो इसका सौभाग्य है। क्या तुम्हे वह सडक पसन्द है जिस पर कभी कोई चलता न हो? कितनी अच्छी है यह सडक जो राही को उसकी मजिल तक पहुँचाती हो!"

सूरज डूब चुका था। सारे वातावरण मे एक विषाद छा गया। सदाशा की बात से मै कुछ व्याकुल-सा हो उठा, लेकिन तुरन्त ही इस खयाल ने मुझे खुश कर दिया कि लडकी माँ बनने वाली थी।

मै मगला को यह शुभ समाचार सुनाने को आतुर था, और दूसरे दिन ही दिल्ली के लिए रवाना हो गया।

पाँच महीने बाद सदाशा ने एक पुत्री को जन्म दिया। मैं और मंगला फूले न समाए और उसे बधाई देने उसके घर पहुँचे।

जिन्दगी फिर अच्छी तरह गुज़रने लगी। सदाशा को लेकर पैदा

हुई परेशानी दूर हो चुकी थी। सदाशा और विनय के समय-समय पर पत्र मिलते रहने लगे और उनकी पनपती गृहस्थी के समाचार सुन हम सतुष्ट थे।

× × ×

लेकिन क्या बीस वर्ष पूर्व जो खोज मैने आरम्भ की थी वह मगला की प्राप्ति से समाप्त हो चुकी थी? क्या मगला मे मुझे वह पूर्णता मिल चुकी थी जिसे जानना-समझना ही पुरुष का सदा से अचेतन प्रयास रहा है? कहना न होगा कि मगला की प्राप्ति से पूर्व मेरे जीवन मे एक प्रकार की गति थी, जो मगला के सम्पर्क से एक सुखद स्थिरता मे परिणत हो गई। किन्तु स्थिरता कैसी भी हो जीवन का द्योतक नही।

पिछले बीस-बाईस वर्षों से मगला ने सुसस्कृत बनने की अपनी कोशिश मे कोई कसर न उठा रखी थी। उसने बहुत-कुछ जाना-पढा था और सचमुच उसका अद्वितीय बौद्धिक विकास हुआ था। अब हर चीज़ पर उसकी अपनी राय होती थी, और अक्सर इतनी दृढ होती थी कि जिस पर पुनर्विचार करने की वह कभी आवश्यकता अनुभव न करती थी, जब कि मेरी पढाई-लिखाई ने मुझे इतना द्वदात्मक बना दिया था कि मैं किसी भी बात पर अपना मत प्रकट करने में हिचकता था।

अब मगला मोटी होने लगी थी और मै पतला। यह हमारे क्रमिक विकास का एक प्रकार का प्रतीक था। जब हम पहले-पहल मिले थे, हम दोनो इकहरे बदन के थे और फिर हम दोनो का हर माएने मे विस्तार हुआ। लेकिन अब हमारा शारीरिक गठन और हमारी मानसिक धाराएँ हमे भिन्न दिशाओ में लिये जा रही थी।

मगला समाज-सुधार के काम करती थी। उसका विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह खुद पढ-लिख कर, दूसरों का सुधार करे, और अगर वह ऐसा नहीं करता तो उसकी पढाई-लिखाई व्यर्थ है। मेरी समझ मे नही आता था कि कोई आदमी, चाहे वह कितना ही

पढा-लिखा हो, कैसे किसी दूसरे को सुधारने का दुस्साहस कर सकता है ? किसी भी आदमी से सिर्फ यही रिश्ता रखना कि उसको सुधारना है, मुझे हिमाकत नजर आता था, समाज-सुधार के दभ के पीछे मुझे बहुत बडा खोखलापन नजर आता था ।

और मै मगला से विमुख होकर फिर किसी चीज की तलाश मे लग गया। पचास वर्ष की उम्र मे जाकर फिर मेरे जीवन मे गति आई। फिर वही खोज शुरू हुई जो बीस वर्ष पूर्व अधूरी छूट गई थी ।

रात के ग्यारह बजे थे और मैं बत्ती बुझा कर लेटा ही था कि किसी ने बाहर से आकर दरवाजा खटखटाया । पूछने पर मालूम हुआ कि विनय के गाँव से एक आदमी आया था । मैंने सोचा राजी-खुशी पूछ कर सुबह अच्छी तरह बात करूँगा, लेकिन उसने मेरे पहले सवाल का ही ऐसा जवाब दिया कि पैरो-तले धरती खिसक गई ।

वह विनय का पुराना विश्वासी नौकर था । मैंने उसे सबसे पहले विनय की शादी पर देखा था और गाँव में तो मेरी उससे काफी बात-चीत हुई थी । विनय उसे 'दद्दा' कहकर बुलाता था क्योकि उसने ही बचपन से विनय को पाला-पोसा था । वह सिर्फ विनय की निजी देख-भाल ही नही करता था, बल्कि उसके हर काम में, खासतौर पर खेती-बाडी के काम में, उसका दाहिना हाथ था ।

"कहो, सदाशा कैसी है ?" मैने पूछा ।

"वह चली गई····· भाग गई ।"

और उसके बाद जो कुछ उसने कहा स्वप्न जैसा असम, असगत, विकृत प्रतीत हुआ —एक ऐसा दीर्घ कुस्वप्न जो रात्रि के प्रथम पहर से आरंभ होकर दिन निकलने पर भी चलता रहा । सदाशा भाग गई ! अपनी मासूम बच्ची तक को छोड कर चली गई !!

उस भलेमानस ने बताया कि कुछ महीने पहले सदाशा ने एक दिन बहुत गुस्सा किया । कहने लगी गाँव में उसका दम घुट जायगा, वह मर जायगी । विनय ने समझा कि छोटे बच्चे के साथ सफर करना उचित

न था, लेकिन सदाशा ने बच्चे के लिए पहले से ही एक धाय तैयार कर रखी थी।

फसल कटने को तैयार थी। विनय ने कहा, "यह वक्त घूमने-फिरने का नही, काम का है। फसल कट जाने दो, और फिर मैं तुम्हारे साथ, जहाँ तुम कहोगी, वही चलूँगा।"

"तुम अपनी फसल काटो, मैं चली," कहकर सदाशा उठ खडी हुई।

विनय ने कोई जवाब न दिया।

और वह एक मामूली-सी साडी मे घर से निकल पडी। सदाशा के शरीर पर एक भी गहना न था, क्योकि वह कभी गहना पहनती न थी। पैसा भी उसने न लिया था, क्योकि वह एक साथ तैश मे आकर चल पडी थी।

खेतो को पार कर वह सडक पर आ खडी हुई और बूढा नौकर उसके पीछे दौडता हुआ गया।

"बहूजी, यह क्या कर रही हो ?" उसने विनती करते हुए कहा।

"जाओ, अपना काम करो।" सदाशा ने उसे डाँट दिया।

"लेकिन बहूजी, मै तुम्हे इस तरह नही जाने दूँगा।"

"दूर हट। मै थप्पड मार दूँगी," सदाशा ने कहा।

इतने मे ही लखनऊ जानेवाली बस आगई। सदाशा ने हाथ दिखाया और बस खड़ी हो गई। उस बस में पिछले गाँव के चार-पाँच लोग ऐसे थे जो उस बूढे नौकर को जानते थे। उन्होने बूढे रामजीलाल को आदर के साथ नमस्कार किया। सदाशा बस मे चढ गई, और जैसे ही रामजीलाल उसके पीछे चढने लगा, सदाशा ने उसे एक लात मारदी, और वह गरीब सड़क पर गिर पडा।

रामजीलाल ने अपने जीवन मे कभी ऐसा अपमान न सहा था। शर्म के मारे वह आँख उठाकर ऊपर न देख सका। वह वही सिर पकडकर सडक के किनारे बैठा रहा, और बस चल दी।

× × ×

मै और मगला दूसरे दिन ही विनय के गाँव पहुँचे। रास्ते मे हम दोनो ने आपस मे एक शब्द भी न कहा। हम दोनो के ज़ख्म इतने हरे थे कि उन्हे एक दूसरे को दिखाना ही अपना दर्द बढाना था।

विनय का तो हाल ही बेहाल था। हमने उससे बात करनी चाही, लेकिन वह कोशिश करने पर भी कुछ न कह पाता था। उसने सिर्फ इतना ही कहा :

"मैने आप से वादा किया था कि मैं सदाशा की शिकायत कभी न करूँगा।"

"लेकिन बेटा," मगला ने समझाया, "हम भी तुम्हारे अपने ही हैं। सदाशा तुम्हे छोड कर चली गई, लेकिन हम जीवन-भर तुम्हारा साथ न छोडेगे। अगर हम लोग ही आपस मे अपना दुख न कहेगे तो दुख के बोझ से ही दब कर मर जाएँगे। वह कहाँ गई, यह तो बताओ ?"

"कुछ तो बताओ," मैने भी कहा और आखिर विनय के धैर्य का बाँध टूट गया और जब उसने बोलना शुरू किया उसकी आँखो से आँसू बह रहे थे और बीच-बीच मे उसके होठ फडक कर उसके वाक्यो को अधूरा छोड देते थे।

शक की गुजाइश न थी कि विनय को सदाशा से बहुत प्रेम था, और वह प्रेम भी सदाशा की शारीरिक सुन्दरता या अन्य किसी विशेषता से न था, बल्कि उसके समूचे व्यक्तित्व से था। वह बहुत पहले जान चुका था कि सदाशा उसे धोखा देती थी, झूठ बोलती थी, लेकिन उसकी सब बुराइयो समेत वह उससे प्रेम करता था।

उस रात बहुत देर तक वह सदाशा के अनाचार और अत्याचार की सुपरिचित कहानी सुनाता रहा, अन्तर इतना ही था कि अब सदाशा की विकृतियो का दायरा बढ गया था। वह सामाजिक नैतिकता की सभी सीमाएँ लाँघ चुकी थी।

विनय की बाते सुनते-सुनते मगला के चेहर का रग बदल गया। लालटेन की मन्दी रोशनी मे वह चेहरा कुछ नीला-सा दिखाई देने लगा,

मानो मूँछ-दाढी के बाल फूट आये हो। जब मैंने उससे शादी की थी मेरी कल्पना थी कि वह बुढापे में भी सुन्दर लगेगी। वह बूढी तो न हुई थी, लेकिन उसके चेहरे पर प्रौढावस्था की कठोरता आ गई थी। और यह कठोरता, जब वह उद्विग्न होती, एक प्रकार की कुरूपता मे परिणत हो जाती थी।

"बस, रहने दो," वह बोली, तुम्हे इस तरह रुलाकर मै कुछ नही सुनना चाहती। तुम मर्द हो, एक बेवफा औरत के लिए इस तरह रोते तुम्हे शर्म नही आती ?"

वह उठ खडी हुई। क्रोध मे उसका शरीर थर्रा रहा था।

"और सदाशा ? उस लडकी का अब मेरे सामने कभी नाम मत लेना। वह सदाशा नही, दुराशा है, विभीषिका है।"

वह कुछ और कहना चाहती थी, लेकिन न जाने क्या सोचकर, दोनो हाथो मे अपना सिर पकड कर बैठ गई। दस-पन्द्रह मिनिट तक हम में से कोई कुछ न बोला, और वह उसी तरह आँखे मूँदे, सिर नीचा किए बैठी रही। अत मे, उसी ने सिर उठाया और अपने आवेश पर नियन्त्रण पाकर बोलना शुरू किया :

"विनय, तुमने उसे बहुत प्यार किया था न ? तुम उसकी हरकतो को देखकर भी चुप रहे। चुप रहे सो तो कोई बात नही, लेकिन तुम उसे समझ भी न पाये। प्यार ने तुम्हे अन्धा जो बना दिया था। तुमने कभी यह न सोचा कि वह कौनसी अजीब चीज है जो उसे हमेशा गलत रास्ते पर ले जाती है ? उसमे कोई अजीब चीज नही, बल्कि किसी बहुत जरूरी चीज़ की कमी है।"

मंगला ने मेरी ओर एक सीधी निगाह से देखा, मानो जो कुछ वह कह रही थी विनय से ज्यादा मेरे लिए हो।

"इस दुनिया मे सब तरह के लोग पैदा होते हैं—किसी के हाथ नही होता, किसी के पैर नही होता, किसी की आँख नही होती तो किसी की जबान नही होती। लेकिन फिर भी वे मनुष्य हैं। किन्तु सदाशा का

एक ऐसा अग गायब है जिसके बिना आदमी को आदमी नही कहा जा सकता । उसमें आत्मा नही, नैतिक सज्ञा नही । वह मनुष्य नही पिशाच है ।"

मगला अपने आतरिक उद्वेग पर काबू पाकर बोल रही थी, लेकिन इस कोशिश मे उसका चेहरा कुरूप होता गया। उसके चेहरे की मास-पेशियाँ तन गईं और उसके गले की नसे उभर आईं ।

"अधा जानता है उसकी आँखे नही, लँगडा जानता है उसकी टाँग नही, लेकिन सदाशा की सबसे बडी ट्रेजेडी यह है कि वह नही जानती कि उसमे किसी बुनियादी चीज की कमी है, कि वह पैदा ही अभागी हुई है । · · मुझे बहुत पहले से इस बात का अन्देशा था, जो मुझे डर था वही हुआ ।"

मै स्तब्ध हो गया । मुझे ऐसा लगा मानो मगला ने एकाएक मेरे पैर के नीचे से जमीन ही खीच ली हो । मगला ने ऐसी बात कही थी जिस की मैं स्वप्न मे भी कल्पना न कर सकता था । उसने बात क्या कही एक ऐसा फैसला दे दिया जिसे सुन कर मैं, और मेरा खयाल है, विनय भी तिलमिला उठा ।

उस रात मै सो न सका । और फिर जब तक मुझे सदाशा न मिली, मै किसी रात भी चैन से न सो सका । हर रात बिस्तरे मे मेरे साथ अजीब शक्ले दाखिल होती और मुझे झझकोर-झझकोर कर परेशान कर देती ।

दूसरे दिन मगला दिल्ली चली गईं और विनय को दिलासा दिलाने मुझे उसके पास छोड गई । मुझे विनय से सच्ची सवेदना थी और मैं कुछ दिन उसके साथ रहकर सदाशा को ज्यादा अच्छी तरह जानना-समझना चाहता था ।

× × ×

शाम को हम दोनो बड़ी सडक के किनारे घूमने निकले । मोटर-गाडियो के पहियो की रगड से चमकती उस सडक को देख मुझे सदाशा की

कही हुई बाते याद आई और मैने उन बातो का जिक्र करते हुए विनय से कहा

"देखो विनय, हम दोनो ने सदाशा को प्यार किया है, और आज भी करते हैं । मगला ने जो कुछ कहा, हो सकता है सच हो, लेकिन मेरा मन उसकी बाते मानने को तैयार नही । मै समझता हूँ केवल प्यार से ही किसी व्यक्ति को समझा जा सकता है, तर्क-वितर्क से नही ।"

विनय नीचा सिर किए चुपचाप मेरे साथ चला जा रहा था । मै अपनी बात की स्वीकृति पाए बिना ही बोलता रहा । शायद मै विनय से कम और अपने आप से ज्यादा बोल रहा था ।

"मैने कभी भी इच्छाओ का दमन सद्‌चरित्रता का प्रमाण नही माना है । मै समझता हूँ जो आदमी सिर्फ अपनी खुशी का खयाल रखता है उसमे कम से कम एक अच्छाई है कि वह किसी दूसरे से जानना नही चाहता कि उसके लिए क्या भला है, क्या बुरा ? वह स्वय अपने अनुभव से जानता है कि कौनसी चीज़ उसके लिए अच्छी है, कौन सा उसका रास्ता है, और ऐसे आदमी मे उस आदमी की अपेक्षा अधिक आदमियत है जो किताबे पढकर या दूसरो की बाते सुनकर अथवा समाज द्वारा खडे किये गये आदर्शो का अनुसरण कर अपना रास्ता बनाता है । ..... आखिर, सतुष्टि से पैदा हुई भावना ही तो खुशी है, और यदि सतुष्टि का अर्थ शारीरिक व मानसिक आवश्यकता के तनाव से राहत पाना है तो समझ मे नही आता कि इस प्रक्रिया के परिणाम को नैतिक अथवा अनैतिक कैसे कहा जा सकता है !"

मै इसी तरह बोल-बोल कर सोचता चला जा रहा था पर विनय की चुप्पी से मुझे शक होने लगा कि शायद मै सदाशा का पक्षपात कर रहा था । और मैने विनय की ओर देखते हुए कहा ।

"लेकिन कुछ भी हो, शारीरिक भोग की इच्छा ऐसी चीज़ नही हो सकती कि जिसे एक आदर्श बना कर जिन्दा रहा जाय, सारी दुनिया को दुश्मन बनाया जाय ।"

"लेकिन सदाशा मे शारीरिक भोग की बहुत अधिक लालसा तो न थी," विनय ने बोलना शुरू किया। "मैं काफी दिनो तक उसके साथ रहा हूँ और कम-से-कम उसकी इस एक बात को अच्छी तरह समझता हूँ। वह तो सवाल पूछती थी, ऐसे सवाल जो मुझे बिलकुल नगा कर डालते थे। और उन सवालो का जवाब चाहने के लिए ही वह मुझे स्पर्श करती थी, और जो चाहती थी उगलवा लेती थी।.....मेरे और उसके बीच यही एक मुश्किल थी कि वह भूल जाती थी कि वह किसी की बेटी, किसी की बीवी और किसी की माँ है, जबकि मै अपने आपको, अपने सामाजिक स्थान को, और अपने उत्तरदायित्वो को कभी भी पूरी तरह भुला न पाता था।"

"तो फिर," मैने पूछा, "क्या तुम मगला की बात सही समझते हो कि उसमे आत्मा नही ?"

"यह मै नही कह सकता। जज साहब ने ठीक ही कहा है कि दर-असल अभी तक कोई उसकी बराबरी का आदमी नही मिला जो उसकी सही कीमत आँक सके। आप जज साहब से मिलिए। वह आपको सदाशा के बारे मे बहुत सी बाते बता सकेगे। लेकिन मुझे मत ले चलिए। मुझे सदाशा की बाते सुनकर दुख होता है।"

"सदाशा का जज साहब के साथ क्या सम्बन्ध था ?" मैने आश्चर्य के साथ पूछा।

"उसका हर एक के साथ एक ही सम्बन्ध था—स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध।"

मै जज साहब से विनय की शादी के मौके पर मिल चुका था। वह मेरे हमउम्र थे और उन्होने मुझसे काफी खुलकर बाते की थी। उन्होने मुझ मे खासा दिलचस्पी ली थी और अदालत मे दिए गए अपने कई फैसले सुनाए थे। एक किस्सा मुझे आज भी याद है जिसे सुनकर उस वक्त मैं सहम गया था। कह नही सकता उस किस्से को सुनाने में उनका क्या अभिप्राय था। शायद वह मुझे आतकित देखना चाहते थे, हालाँकि

मुझे किसी बात का डर न था क्योकि मै सदाशा सम्बन्धी सब अच्छी-बुरी बाते विनय को पहले ही बता चुका था ।

एक दिन अदालत मे उनके सामने एक मामला पेश हुआ जिसमे मुलजिम एक अन्धा आदमी था । पुलिस की रिपोर्ट थी कि उस अंधे ने अपनी जवान बीवी को जान से मारा था । शव-परीक्षा की रिपोर्ट थी कि स्त्री के शरीर पर बेहद बेरहमी से दस-बारह चोटे की गई थी, जो कि नीद की हालत मे ही सम्भव थी । जाहिर था कि औरत को अपना बचाव करने का कोई मौका न मिल पाया था । सारा गॉव पुलिस की तरफ से गवाही देने को तैयार था । मुलजिम की तरफ से न कोई वकील था और न गवाह । जब उससे पूछा गया कि उसने कोई वकील क्यो नही नियुक्त किया तो उसका उत्तर था कि उसने अपनी पत्नी की हत्या की थी और वह सजा पाने अदालत मे आया था, न कि रिहा होने । जज साहब ने फैसला मुल्तवी कर दिया और मौके पर जाकर खुद तफतीश की । मुलजिम की बीवी बदचलन थी । गॉववालो ने कई बार आगाह किया कि वह अपनी बीवी को काबू मे रखे पर वह इस कोशिश मे हमेशा नाकामयाब रहा । आखिर, पञ्चो ने फैसला दिया कि वे दोनों गॉव छोडकर चले जॉय । मुलजिम की बीवी ने भरी पञ्चायत मे पञ्चो को बुरा-भला कहा । लोगो ने उस औरत से कुछ न कहा पर उसके मर्द को बुरी तरह धिक्कारा, उसे निकम्मा, नामर्द बताया । और उसी रात अन्धे ने अपनी बीवी को एक गण्डासे से मार डाला ।

जज साहब का फैसला था कि अन्धे को रिहा कर दिया जाय ।

जज साहब ने ·यह किस्सा सुनाने के बाद बहुत गौर से मेरी ओर देखा मानो वह मेरे मन की थाह लेना चाहते हो । मै मुस्करा दिया और उन्होने नज़र फेर ली, शायद वह मेरी प्रतिक्रिया से प्रसन्न न थे ।

वह विनय के बहुत घनिष्ट मित्र थे और विनय उनकी बहुत इज्जत करता था । जज साहब की राय पाकर ही विनय ने सदाशा से शादी की

थी, और जब उन्होने मुझे अन्धे का किस्सा सुनाया था, वह सदाशा के पूर्व इतिहास से परिचित थे।

विनय के घर शादी के बाद कई मित्र बहुत ज्यादा आने-जाने लगे, जिनमे जज साहब सबसे प्रमुख और सबसे बडी उम्र के थे। सदाशा ने भी घनी दोस्ती के लिए उन्ही को चुना। धीरे-धीरे सदाशा के प्रति जज साहब इतने अधिक आकृष्ट हो गए कि उन्होने अपने काम तक की उपेक्षा करना आरम्भ कर दिया। कई दिनो तक लगातार वह कचहरी न जाते और विनय के घर ही पडे रहते। सदाशा हमेशा उनके साथ होती—दिन भर बातचीत करती, कविताएँ सुनती-पढती और शतरञ्ज खेलती। कभी-कभी वे दोनो विनय को अकेला छोडकर बाहर भी चले जाते थे। विनय ने सदाशा की खुशी की खातिर और जज साहब से अपनी पुरानी दोस्ती का खयाल रखते हुए इस असगत मैत्री का विरोध न किया। एक वक्त ऐसा भी आया कि जज साहब नौकरी से इस्तीफा देकर खुल्लम-खुल्ला परवाने बन गए। और तभी सदाशा ने उन्हे ठुकरा दिया।

विनय के पूछने पर सदाशा ने कहा, "बुड्ढा पागल हो गया। मै क्या करूँ ?"

विनय ने जज साहब के बारे मे और भी कई बाते बताई, लेकिन वह साफ-साफ कुछ बता न पाता था। वह सिर्फ सदाशा के गम में घुलना चाहता था, और वह भी अकेला रहकर।

मैंने जज साहब से मिलना ज़रूरी समझा, और अगले दिन ही मै उनके घर के लिए रवाना हो गया। नौकरी छोडने के बाद वह अपने घर आगरा चले आए थे। आगरे मे उन्होंने अपनी नौकरी के दौरान मे एक शानदार कोठी बनवाई थी, जिसकी आधुनिकता की तारीफ मै विनय से पहले ही सुन चुका था।

रेलवे स्टेशन पर अपना सामान छोड कर मै सीधा जज साहब के घर पहुँचा। उनकी कोठी के सामने पहुँच कर मैंने देखा कि उनके नाम

के बोर्ड को एक जगली बेल ने ढँक रखा है, और कोठी के अन्दर का बाग बिल्कुल जगल बना हुआ है। फलो के पेडो पर बन्दर झूल रहे हैं और बीच के रास्ते पर ऊँची-ऊँची घास उग आई है। बाग की व्यवस्था और जंगल की अव्यवस्था या मनुष्य की समझदारी और पागलपन के बीच कितनी महीन लकीर है, जो जरा-सी लापरवाही से तुरन्त ही मिट सकती है।

जज साहब अपनी कोठी के बराडे मे एक आराम कुरसी पर बैठे थे और उन्हे दूर से पहचानना मेरे लिए मुश्किल था। जब मैंने उन्हे विनय की शादी मे देखा था, वह नीली सर्ज के सूट मे थे और उनके कोट पर एक ताजा गुलाब था। तब वह बहुत से जवानो से अधिक जवान मालूम होते थे। लेकिन उस दिन मैं उन्हे देखकर हैरान हो गया। वह ऐसे लग रहे थे मानो सैकडो वर्षो से पत्थर की मूर्ति बन कर वही बैठे हो। उन की दाढी के अधिकाँश बाल सफेद हो चुके थे और सिर के बाल बढकर कधो पर झूलने लगे थे। वह एक मैला-सा कुरता-पजामा और खडाँऊँ पहने अकेले बैठे थे।

उन्होने मुझे पहचाना नही, लेकिन जब मैंने बताया कि मैं सदाशा का पिता हूँ तो उनकी बुझी हुई आँखो में चमक आ गई और उन्होने अपने सामने पडी हुई कुरसी पर मुझसे बैठने को कहा।

"जज साहब, आपने अपना यह क्या हाल बना लिया है?" मैंने आश्चर्य और दुख के साथ पूछा।

वह मुस्कराए और मैंने देखा कि उन्होने दाँत साफ करना तक छोड दिया था। कहने लगे, "अब मैं जो दीखता हूँ वही हूँ और जो हूँ वही दीखता हूँ।"

"क्या पहले ऐसा नही था?" मैंने पूछा।

"नही। पहले मैं सभ्यता का चोला पहने हुए था। सभ्यता ने मुझे चालाक, चोर और झूठा बना रक्खा था। सभ्यता ने मनुष्य को नैतिक बनाने की बजाय अन्दर से वहशी बनाकर उसकी बाहरी जिन्दगी पर

रग-रोगन कर रखा है। कुदरत ने इसान को ऐसा नही बनाना चाहा । कुदरत ने इसान को आजाद बनाया है, लेकिन तहजीब ने उसे बहुत-सी बदिशों मे जकडकर उसका लचीलापन छीन लिया, उमे अपाहिज बना दिया ।"

"लेकिन" मैंने पूछा, "आप मे एक साथ इस तरह की तब्दीली कैसे आई ?"

"यह सब सदाशा की ही देन है," कह कर वह मुस्करा उठे।

"लेकिन जज साहब," मैने फिर पूछा," आप तो बहुत समझदार थे, लोगो की जिन्दगी-मौत के फैसले करते थे। आपको सदाशा जैसी नादान लडकी क्या बता सकती थी ! उसकी उम्र ही क्या थी, उसका तजुरबा ही क्या था ?

"उसकी उम्र ?" कहकर वह हँस पडे। जब मैं शुरु मे उससे मिला था, वह शायद इक्कीस-बाईस वर्ष की होगी। जब दुबारा उससे मिला वह नब्बे बरस की थी—मेरी दादी के बराबर दुनिया के बारे मे जो कुछ जानने लायक था, सब जानती थी। जब तीसरी बार उससे मिला वह चार सौ-पाँच सौ वर्ष पुरानी मुगलानी थी जो अरब से हिन्दुस्तान फतह करने आई थी। उसने मुझे शतरज की चालो से, उमरखैयाम की रुबाइयो से मेरी आधुनिक साधारणता या नगण्यता से ऊपर उठाकर एक साथ हूरो के बीच बहिश्त मे पहुँचा दिया। उसकी उम्र चार सौ-पाँच सौ वर्ष की नही हजारो वर्ष की है। वह महाभारत के जमाने मे थी, उससे भी पहले वैदिक-काल मे उसने याज्ञवल्क्य मे एक प्रश्न पूछा था जिसका वह उत्तर न दे पाया था। वह 'सत्य' जानना चाहती थी, वह मनु की साथिन थी, आदम की बीवी हौवा थी। शायद यह मेरे पूर्वजो के कर्म का ही फल था कि वह सनातन युवती मेरे सम्पर्क मे आई और उसने मुझे जीवन के आरम्भ और अत के दर्शन कराए।"

"आपने तो मुझे और भी उलझन मे डाल दिया," मैंने कहा, आपको मालूम है वह अपने पति, अपनी बच्ची, अपने माँ-बाप, सबको

छोडकर चली गई। क्या ऐसा करना अनैतिक, विकृत, कुत्सित न था ? यदि उसमे आत्मा का लेशमात्र भी अश होता तो उसमे सहानुभूति, सवेदना होती और वह अपने शुभचितको को इस तरह दु ख न पहुँचाती। लेकिन आपके वर्णन ने तो उसे देवी बना दिया। कुछ समझ मे नही आता कि आखिर वह चाहती क्या थी, किस मिट्टी की बनी हुई थी ?"

"वह आजादी चाहती थी। उसे माँ, बेटी और बीवी के बधन मे बाँधकर कोई न रख सकता था। यह मै बहुत पहले जान चुका था।

"लेकिन आखिर आजादी किस लिए चाहती थी ?" मैंने पूछा। "दूसरो को सताने, बरबाद करने और रुलाने की आजादी ? क्या आप इस तरह की आजादी के हिमायती हैं ?"

"नही," वह बोले, "सदाशा इस तरह की आजादी नही चाहती थी अगर आप समझते हैं कि वह बिना समझे-बूझे अपनी मनमानी करने की आजादी चाहती थी तो गलत है । अगर आप समझते हैं कि उसमे किसी तरह का अभाव था जिसकी पूर्ति के लिए वह आजादी चाहती थी तो भी गलत है। वह तो अपने अन्दर छिपी हुई ताकत को रिहा कर ऊँचा से ऊँचा उठने की आजादी चाहती थी, और जब कभी कोई इस ताकत को दबाना चाहता तो वह उस रुकावट को तोड-फोड कर अपना रास्ता बना लेती थी। हार उसे नामजूर थी।"

"तो फिर आप शायद यह भी जानते होगे," मैंने पूछा, "कि उसके अन्दर छिपी हुई यह ताकत क्या है ?"

"इतना मै जरूर जानता हूँ कि दुनिया को जानना-समझना उसका एक मूलभूत गुण है। जानने-समझने की उसमे एक स्वाभाविक जिज्ञासा है, और इसी जिज्ञासा ने उसे स्वतत्रता और मौलिकता प्रदान की है ।"

जज साहब उठ खडे हुए और उन्होने अपने नौकर को आवाज देकर मेरे लिए शरबत मँगवाया। शरबत पीते हुए मैंने उनसे पूछा ।

"क्या अब आप सदाशा से मिलना नही चाहते ?"

"मेरे चाहने से क्या होता है," वह बोले। "उसके लिए मै मर

चुका । मै उसकी जिन्दगी मे एक पडाव था जिसे छोड कर वह आगे बढ गई। उसके साथ कदम मिलाकर चलने की मुझ में ताकत न थी और यही विनय की कमजोरी थी । वह शमा थी और हम परवाने। मै शायरी नही कर रहा, हकीकत बयान कर रहा हूँ । हर आजाद जिन्दगी लौ की तरह लपकती उठती है। आप चाहे हाथ ताप सकते हैं या अपने आप को झुलसा सकते हैं । इसमे आग का कसूर नही, आग नैतिक या अनैतिक नही।"

जज साहब से विदा लेकर मै दिल्ली लौट आया।

× × ×

मगला एक हफ्ते मे ही बूढी दिखाई देने लगी । उसकी कनपटी के पास के बाल सफेद होने लगे और आँखो के नीचे कालापन आगया । उसकी यह दशा देखकर मुझे बहुत दु ख हुआ । मैने उसे समझाने की बहुत कोशिश की । जज साहब की कही बाते सुनाई और विश्वास दिलाना चाहा कि उसकी यह धारणा गलत थी कि सदाशा मे आत्मा नही। लेकिन वह यह सब सुनने को तैयार न थी। कहने लगी, "जज साहब तो पागल हो गए। पागल की कही बाते सुनाकर मुझे दिलासा देना चाहते हो !"

मैंने उसे दूसरे पहलू से समझाने की कोशिश की। "अगर सदाशा चली गई तो चली जाने दो। समझ लो कि वह मर गई।"

"काश, वह मर जाती !" कहकर उसकी आँखे भर आई। "जब तक वह लडकी, मेरे खून-मास से बनी वह राक्षसी ससार को दूषित करती रहेगी, मुझे शान्ति न मिलेगी।. ....और तुम खुद अपने दिल से पूछो। क्या तुम यह समझ कर बैठ सकते हो कि सदाशा मर गई ?"

मगला ने ठीक ही कहा था। सदाशा मेरे लिए मरी न थी बल्कि मुझ से दूर होकर वह और भी ज्यादा एक जीती-जागती हकीकत बन गई थी, जिसे समझना मेरे लिए इतना ही आवश्यक था जितना कि दाढ में अटके हुए तिनके को निकालना और देखना कि वह कितना बडा था जो

इतनी देर से परेशान कर रहा था ।

रात को जब मै बिस्तरे पर जा लेटा तो मगला मेरे पास चली आई और मेरे गले लिपट सुबक-सुबक कर रोने लगी । उसे समझाना फिजूल था । मै चुपचाप उसकी व्यथा अनुभव कर दु.खी होता रहा ।

"मै तीर्थ-यात्रा करना चाहती हूँ," वह बोली, "अगर तुम्हारी इजाजत हो तो कल ही चली जाऊँ । मेरा मन बहुत अशान्त है । शायद साधु-सन्तो की सगति से, धार्मिक ग्रन्थो के पठन-पाठन से मै अपना क्रोध भूल जाऊँ ।"

"अगर तुम्हारी यही इच्छा है," मैने कहा, "तो चलो, मै भी तुम्हारे साथ चलता हूँ ।"

"नही," वह बोली और उसकी आँखों मे फिर आँसू झलक आये। तुम्हारा और मेरा रास्ता अलग-अलग है । तुम सदाशा को समझना चाहते हो, मै समझ चुकी । जब मै तीर्थ-स्थानो मे शान्ति की खोज में भटक रही होऊँगी, तुम विलास नगरो में सदाशा को ढूँढ रहे होगे। लेकिन वादा करो कि सदाशा मिल जाय तो मुझे जरूर सूचित करोगे ।"

"लेकिन इस तरह क्यों बातें कर रही हो मानो मुझे हमेशा के लिए छोडकर चली जाना चाहती हो । यह ठीक है कि मै सदाशा को ढूँढना चाहता हूँ, समझना चाहता हूँ, लेकिन विश्वास रखो, तुम्हे खोकर मैं उसे नही पाना चाहता," मैने उसका हाथ पकड कर कहा ।

"मैने कहा न कि फिलहाल हम दोनो के रास्ते जुदा है" वह बोली, "लेकिन मुझे विश्वास है कि वे किसी-न-किसी दिन जरूर मिलेगे ।"

मगला की बात सुनकर मेरे अन्दर सन्नाटा छा गया । उसकी यह बात कि हमारे रास्ते जुदा हैं आकाशवाणी की तरह मेरे व्योम मे समा गई, और यह सोचकर कि उसकी कही बाते अक्सर पत्थर की लकीर की तरह अमिट होती थी, मै बेचैन हो उठा ।

मगला मेरे जीवन का एक अविभाज्य अग बन चुकी थी । वह मुझे मेरी अच्छाइयो-बुराइयों को, मेरे समूचे गठन को अन्दर-बाहर से इतनी

अच्छी तरह जानती थी कि केवल उसकी उपस्थिति मे ही मै मनमाना, अबाध जीवन जी सकता था। और इसी समझ के कारण वह मेरा सच्चा आदर करती थी। उसके अलावा और किसी से मैंने सच्चा आदर नही पाया, लोकाचार और शिष्टाचार पाया।

मैं जानता था कि मगला का साया दूर होते ही मेरा जीवन जगल बन जायगा और उस जगल की उच्छृङ्खल झाडियो मे फँसकर मैं बेमौत मर जाऊँगा। मुझे पच्चीस वर्ष पूर्व का वह दिन याद आया जब मै नशे मे सुध-बुध खोकर ज़मीन पर गिर पडा था और उसने मुझे सहारा देकर उठाया था। और तब से लगातार पच्चीस वर्ष तक सींच कर उसने मुझे आदमी बनाया था।

तो, मगला चली गई। जाते वक्त उसने कहा, "मेरी इस निष्ठुरता के लिए क्षमा करना। घर में रहकर मुझ से नही देखा जाता कि तुम रात-दिन सदाशा की ही बाते करो, हमेशा उसके बारे में ही सोचा करो, मानो दुनिया में और कोई चीज ही नही रही। जब मनुष्य ससार की सब वस्तुओ से मुँह मोडकर किसी एक विशेष वस्तु के पीछे पड जाता है तो उसका धर्म छूट जाता है। किसी एक वस्तु, एक आदर्श, एक कल्पना के लिए ही जीना बिलकुल पागलपन है।"

गाडी चल दी। मगला की आँखे भर आईं। उसका अन्तिम वाक्य था: "तुम नही जानते तुम्हें छोडकर जाना मेरे लिए कितना मुश्किल है। ईश्वर से मेरी यह प्रार्थना है कि जब मैं मरूँ तो मेरा सिर तुम्हारी गोद मे हो।"

मै घर लौट आया। यह वही घर था जो मगला की शीतल छाया मे सजीव प्रतीत होता था, हँसकर स्वागत करता था, सुरक्षा देता था, और अब ईंट-चूने का वह बेडौल ढेर दोपहर की धूप मे नगा, निकम्मा नज़र आने लगा। यह वही घर था जहाँ सदाशा पली थी, जहाँ वह हँसती-डोलती थी। इस घर के चप्पे-चप्पे पर उसके नन्हे पैरो के चिह्न थे, कमरो के कोनो मे अब भी उसकी हँसी की गूंज छिपी थी।

अब वह घर मेरे लिए असह्य हो उठा। रात को मगला की चूडियो की झनक सुनाई देती—उस मगला की जो प्रत्यक्षत निकट होते हुए भी मुझ से दूर हो गई, और दिन मे सदाशा की दबी हंसी सुनाई देती—उस सदाशा की जो प्रत्यक्षत. मुझ से दूर होते हुए भी मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर रही थी।

मैं दिन भर बैठा मगला और सदाशा के चित्रो का एलबम देखता रहता। मगला और सदाशा के पुराने चित्रो को बारबार देख कर उनके क्रमिक विकास के विभिन्न चित्र मेरे सामने उपस्थित हो उठते। कभी उठकर मगला के कमरे मे चला जाता और उसके पुराने सन्दूको को खोलकर उसके कपडे देखता—वह सिदूरी साडी जो उसने अपने विवाह के दूसरे दिन पहनी थी, वह नीली साडी जो उसने सदाशा के नामकरण के दिन पहनी थी—सबको सन्दूक से निकाल कर बिखेर देता। और जब कभी उन कपडो के बीच सदाशा के छोटे-छोटे फ्रॉक, मोजे या टोपियाँ दिखाई दे जाती तो उन्हे कलेजे से लगाकर रोने लगता। मुझे सदाशा की कई पुरानी किताबे और कॉपियाँ मिली, उसकी बाल-सुलभ लिखावट को न जाने मैंने कितनी बार निहारा, और उसके पुराने खिलौनो को जिन्हे वह बचपन मे चूमती रहती थी, अब मैं चूमने लगा।

लेकिन यह स्थिति बहुत दिनो तक न रही। देवताओ ने मेरा रास्ता पहले ही नियत कर दिया था जिसका मुझे दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक आभास होने लगा। वह दिव्य सदेश असाधारण था और उसने मुझे भी असाधारण बना दिया। मेरे पास अपनी बात के लिए कोई प्रमाण नही, कोई तर्क नही। लोग मेरा मज़ाक उडा सकते हैं, मुझे पागल कह सकते हैं। लेकिन मैं अपने सब पुराने कृत्यो को, अपने मनोभावो को इस सदेश की पुष्टि मे ही पाने लगा। यदि ऐसा न होता तो क्यों मै "जो है" को छोड कर "जो हो सकता है" पाने के लिए उत्कठित हो उठता, तो क्यो मुझे मगला का अनुसरण गतिहीनता और सदाशा का

अनुसरण गतिशीलता प्रतीत होता ?

× × ×

अत मे, एक दिन मै भी घर से निकल पडा। और फिर घूमता रहा, देश के बडे-बडे नगरो की परिक्रमा लगाता रहा। मुझे मालूम नही कि कब गर्मी आई, कब बरसात गई, और फिर सर्दी मे पुराने कपडो की जरूरत महसूस होने लगी।

इस एक वर्ष मे वेश्यालयो, नृत्यालयो और मदिरालयो मे खोई सदाशा को खोजता रहता और असर यह हुआ कि मेरे लिए बुराई बुराई न रही और अच्छाई अच्छाई न रही। मै ऐसे लोगो से मिला जिनका काम ही लडकियो को भगाना और बेचना था, पर वे फुरसत के वक्त शराब न पीकर नेकी-बदी की कसौटी तय करने की कोशिश करते थे। मै ऐसे लोगो से भी मिला जो समाज मे सम्मानित समझे जाते थे, लेकिन वे न जाने क्यो नैतिकता की बात करने मे हिचकते थे और लडकियो का व्यापार करने वालो के सामने अपने को हीन समझते थे। मैने ऐसी लडकियाँ देखी जिन्होने अपने पति की हत्या की थी, लेकिन अपने ग्राहको को कभी धोखा न दिया, कभी बाजिब पैसे से ज्यादा पाने की इच्छा न रखी। इनके विपरीत, ऐसी लडकियाँ भी थी जिनके पति उनके साथ ही रहते थे और वे सचमुच अपने पतियो से प्रेम करती थी, उनके लिए चोरी करती थी, जेल जाती थी, और किसी भी प्रकार का प्रलोभन उन्हें अपने पतियो से अलग न कर सकता था।

मगला के मिलने से पूर्व जब मै घूमता फिर रहा था, मैं अधिक भारी था, जवान होते हुए भी प्रौढता का आचरण करता था। लेकिन अब न जाने क्या हो गया कि मेरा भारीपन, मेरा बुढापा जाता रहा और एक ऐसा हल्कापन महसूस करने लगा कि कहना अतिशयोक्ति न होगा कि मेरे जीवन का क्रमिक विकास बचपन से बुढापा न होकर, बुढापे से बचपन की दिशा मे था। मगला से मिलने से पहले मैं बडी-बडी पोथियाँ पढता था, दार्शनिको और विचारको से वाद-विवाद करता था, और अब

किताबे पढना छोड़कर रडियों के दलालो और शराबियो की सोहबत करने लगा था।

× × ×

एक बार कलकत्ते में कई रोज से लगातार बारिश हो रही थी। मै शाम से आधी रात तक का वक्त एक छोटे-से शराबखाने मे बिता देता था। दो-तीन लोगो से मेरी खासी-अच्छी जान-पहचान हो गई थी, जो मेरी तरह ही वहाँ हर रोज़ आने वालो मे थे। वे झुँझलाए, अकुलाए-से आते और बरसात की झडी देखते हुए गुमसुम पीने लगते। धीरे-धीरे वे भावुक हो उठते और फिर अपने व्यतीत अनुभवो का भार हल्का करने के लिए वाचाल हो जाते।

एक दिन हम लोगो की बातचीत का विषय त्रिया-चरित्र था। यह विषय हम सबको भिन्न-भिन्न कारणो से प्रिय था। इस सिलसिले मे डाक्टर अहमद अपनी बीती एक घटना सुनाने लगे। उनके लहजे से मालूम होता था कि उस किस्से से सबधित उनके अपने आश्चर्य की भावना अभी तक उनमें घर किये हुए थी।

डा० अहमद देश-विभाजन के दिनो एक रात एक मरीज को देख कर लौट रहे थे कि उन्होने अपने घर के बाहर एक औरत को कराहते पाया। उसके सिर से खून बह रहा था और वह उठ न सकती थी। डाक्टर साहब ने उसे अन्दर लाकर मरहमपट्टी की।

डा० अहमद बगाली थे, लेकिन उर्दू अच्छी तरह समझते थे, और उस औरत की शायस्ता उर्दू सुनकर उन्हे समझने मे देर न लगी कि वह किसी अच्छे घराने की थी। उसने बतलाया कि उसका पति एक महीने से बाहर गया हुआ था, और इस बीच दगे शुरू हो गए। गुडो ने उसका घर घेरकर सब माल-असबाब लूट लिया और फिर उस पर बलात्कार करना चाहा। अपने बचाव की उसने हर कोशिश की।

एक गुडे ने तग आकर उस पर छुरा मारा और वह उसकी दाहिनी बाँह पर लगा। दूसरे ने लाठी से सिर पर वार किया और जब वह खून से

लथपथ होकर गिर पडी तो वे उसे वही छोडकर चलते बने। वह जैसे-तैसे डा० अहमद के घर तक चली आई क्योकि वह जानती थी कि मोहल्ले में वही एक ऐसे आदमी थे जो उसे पनाह दे सकते थे।

डा० अहमद अविवाहित थे और एक युवा स्त्री को, चाहे वह किसी दशा में क्यो न हो, अपने घर मे रहने की इजाजत नही देना चाहते थे। लेकिन उस वक्त उसे घर से बाहर निकालना खतरे से खाली न था। शहर मे गुडो का राज्य था और उनके मोहल्ले के प्राय. सभी मुसलमान जान बचाकर भाग चुके थे। डा० अहमद को खुद अपने लिए खतरा न था क्योकि वह हिन्दू-मुसलमान दोनो मे लोकप्रिय थे। आखिर, उन्होने उस औरत को अपने घर मे ही रख लिया।

चौथे रोज, जब डाक्टर साहब उसकी पट्टियाँ बाँध रहे थे, वह बोली·

"डाक्टर, मेरा दिमाग बहुत परेशान है। क्या तुम्हारे घर थोडी-सी शराब नही ?"

डाक्टर साहब खुद पीने वाले आदमी थे, और पीने वाला साथी पाकर खुश हुए। वे दिन ऐसे ही थे कि इसान किसी भी कीमत पर अपनी परेशानियाँ भूलना चाहता था। पीते-पीते डाक्टर को महसूस हुआ कि अभी तक जिसे वह सिर्फ एक मरीज समझे हुए थे वह एक औरत थी, एक ऐसी बेनजीर औरत जिसे अपने पास पाकर उन्हे अहसास हुआ कि अभी तक वह क्या कुछ खोए हुए थे। डाक्टर साहब के मन के भाव पढने में उस औरत को देर न लगी, और उसने उन्हे अपने पास आने की दावत दी। लेकिन उसकी सफेद पट्टियाँ देखकर डाक्टर झिझक गए।

उन्होने कहा, "अभी तुम्हारी पट्टियाँ बँधी हैं।"

"कोई परवाह नही," उसका उत्तर था।

पन्द्रहवे दिन उसकी पट्टियाँ खुल गईं और जब शाम को डाक्टर उसके लिए बहुत से सौगात लेकर घर लौटे तो वह नदारद थी।

डाक्टर अहमद, बहुत दिनो बाद, अपने कुछ रिश्तेदारों से मिलने करांची पहुँचे। वहा उन्हे एक दिन सडक पर अपना एक पुराना वाकिफ-

कार मोहम्मद उमर मिला । मोहम्मद उमर उन लोगो मे था जिन्हे बहुत पहले इलहाम हो चुका था कि हिन्दुस्तान का बँटवारा होने वाला था। हिन्दुस्तान में उसकी बहुत काफी जायदाद थी और एक-दो बडी कम्पनियो मे वह शेयर-होल्डर भी था। उसने धीरे-धीरे, बडी होशियारी से, सब कुछ बेचकर अपनी दौलत कुछ थोडे से जवाहरात मे बदल ली।

लेकिन कराची मे मोहम्मद उमर को फटेहाल पाकर डा० अहमद को बहुत ताज्जुब हुआ। मोहम्मद उमर ने बताया कि उसका वह हाल एक औरत की वजह से हुआ था। वह औरत उसे लखनऊ मे मिली थी। वह उमर के साथ रहने लगी और धीरे-धीरे उमर साहब उस पर इतना भरोसा करने लगे कि उन्होने उससे कोई बात छिपाकर न रखी। उमर साहब ने बाकायदा निकाह पढकर उसे अपनी बीवी बना लिया। वह जानती थी कि उसे कलकत्ता छोडकर उमर के साथ पाकिस्तान जाना था, और उसने वे मुट्ठी भर हीरे-पन्ने भी देखे थे।

कलकत्ता मे अचानक ही दगा शुरू हो गया। मोहम्मद उमर की भी सब तैयारियाँ पूरी थी। लेकिन एन वक्त पर जब उसने तिजोरी खोली तो अपने जवाहरात नदारद पाए। शक की गुजाइश न थी कि वह उस औरत की ही करतूत थी। मोहम्मद उमर ने पहले प्यार-मोहब्बत से और फिर ज़ोर-जबर्दस्ती से उसे अपने काबू करना चाहा। पर वह न मानी। उधर उमर के घर मे गुडे घुस आए। आखिर उमर ने तग आकर अपने पास पडा हुआ चाकू उस औरत को खीचकर दे मारा और वह उसकी बाँह पर जा बैठा और खून बहने लगा। वह फिर भी न मानी और उमर ने घर छोडने से पहले एक डडे से आखिरी वार उसके सिर पर किया। इतने मे ही गुडे मोहम्मद उमर के मकान की ऊपर की मजिल मे चले आए, जहा कि वह उस औरत से जूझ रहे थे। अपनी जान हथेली पर रख कर जैसे-तैसे वह घर से निकल भागे।

"क्या नाम था उस औरत का ?" डाक्टर अहमद ने पूछा।

"थी तो वह हिन्दू, लेकिन मैने उसे ज़रीना नाम दिया था।"

और जरीना वही औरत थी जो डाक्टर अहमद के पास पन्द्रह दिन रह कर चली गई । डाक्टर अहमद को क्या मालूम था कि उस खातून के पास उस वक्त दो लाख की पूँजी थी ।

मै इस तरह के किस्से सुन कर 'बदमाश औरत' की भूमिका मे सदाशा की कल्पना किया करता । आरभ मे यह कल्पना मेरे लिए अत्यत कष्ट-कर थी । दिन-रात इसी तरह की बाते सोचते-सोचते मैं बहुत दु:खी हो जाता । कभी सोचता इस तरह का जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति को ढूढ निकालना असभव था । क्या पता वह मर ही गई हो क्योकि कोई ताज्जुब नही धोखा खाए किसी आदमी का छुरा उसके सीने में बैठ चुका हो । उसे ढूढना व्यर्थ है, व्यर्थ है मै कई बार अपनी बुद्धि से इसी नतीजे पर पहुँचा ।

लेकिन मेरा मन मेरी बुद्धि का दास न बन सका, और धीरे-धीरे मैंने यह सब सोचना छोड दिया, या कहना चाहिए कि सोचना ही छोड दिया । मन जिधर ले जाता उधर ही चला जाता, और मन कहता था कि सदाशा को ढूँढो । सदाशा को ढूँढना अब मेरे लिए एक दूसरे स्तर की चीज थी । अब उसके प्रति पहले जैसी ममता न रही, लेकिन मेरी एक दिनचर्या बन चुकी थी जिसे बदलना मेरे लिए आसान न था ।

× × ×

उन दिनो मै बम्बई मे था । दिन भर टैक्सी और ट्राम पर और पैदल मारा-मारा फिरता था । रास्ते चलती हर औरत को गौर से देखना और कई बार मुगालता हो जाता कि हो न हो दूसरे फुटपाथ पर जाने वाली औरत सदाशा है । मै दौडकर सडक पार करता और फिर मायूसी के साथ चलने लगता ।

एक दिन शाम को समुद्र किनारे मैं इसी तरह घूम रहा था कि पीछे से किसी ने मेरे कधे पर हाथ रखा ।

"आप किसे ढूँढ रहे हैं ?" उसने कहा ।

"आपको मतलब ?" मैंने घबराते हुए पूछा ।

उत्तर मे वह मुस्करा दिया। उसकी मुस्कराहट परिचित मालूम दी। फौरन ही मुझे याद आया कि पच्चीस-तीस साल पहले जब मगला न मिली थी और मै निरुद्देश्य घूमता फिर रहा था, उस आदमी से मेरी काफी दोस्ती हो गई थी। उसके साथ एक ही कमरे मे एक-डेढ महीने रहा था। तब वह एक गैरेज मे अकेला रहा था और दिन भर कला-सबधी बाते किया करता था। वह चित्रकार था।

उसका दृढ मत था कि चित्रकार के लिए स्त्री के शरीर से बढकर और कोई विषय चित्रण और चिन्तन के लिए नही, स्त्री की नग्नता ईश्वर की महानतम कृति है। मैं तब यह न मानता था। मैं वर्षों से स्त्रियो की नग्न मूर्तियाँ और चित्र देखता आया था और मेरे मन में सदा ही यह आशका बनी रही थी कि मूर्तिकारो और चित्रकारो ने कला के नाम से अपने मन मे छिपी वासना ही व्यक्त की है। लेकिन गजानन को चित्र बनाते देख मुझे मानना पडा कि सदियो से कलाकार जिस चीज को व्यक्त करने की कोशिश करता आया है वह वास्तव मे वासना-व्यसन से परे है, वह तो जीवन के उत्कृष्टतम को व्यक्त करने का सनातन प्रयास है। मैंने उसे दिन-रात एक चित्र पर काम करते और फिर निराश होकर अपना सिर धुनते देखा था। वास्तव मे उसने नग्न स्त्रियो के कई बहुत सुन्दर चित्र बनाए थे, पर वह कभी भी पूर्णतः सतुष्ट नजर न आता था। उसका खयाल था कि वह अभी तक स्त्री के स्वरूप के मूलभूत गठन को पकड नही पाया था।

उस दिन बम्बई में अचानक गजाननराव को पाकर मै बहुत खुश हुआ।

"क्या अब भी नगी औरते पेन्ट करते हो ?" मैंने पूछा।

"हाँ," उसने कहा।

"शादी नही की ?"

"की थी।"

"बीवी मर गई ?"

"नही, पागल हो गई।"

"क्यो ?"

"यह तो मै भी नही जानता ?"

"और तुमने उस औरत को छोड दिया ?"

"नही तो क्या तुम समझते हो पागल के साथ भी रहा जा सकता है ?"

"आओ चलो," मैंने कहा, "तुम्हारी पेन्टिग्स देखे कि तुमने पिछले पच्चीस साल में क्या किया।"

वह मुझे अपने स्टूडियो में ले आया। जब तक उसने बत्ती न जलाई मै अधकार मे भी सजग था लेकिन। बत्ती जलते ही मैं सपनो की दुनिया मे आ गया—मानो बचपन के भूले हुए सब दु स्वप्न उस कमरे में समाए हो। चारो दीवारो पर तस्वीरे टँगी थी—ऐसी भयकर और वीभत्स जिन्हे देख कर मै एकबारगी सहम उठा।

"यह सब क्या है ?" मै चिल्ला उठा, "तुम तो स्त्री की सुन्दरता के पुजारी थे। अब क्या उसकी कुरूपता के आराधक बन गए ?"

वह कुछ न बोला और मै अपने सामने की दीवार पर टँगे एक तैल-चित्र को देखता रहा—एक अँधेरा कमरा जिसकी खिडकी मे से चाँद की धुँधली रोशनी एक पलँग पर पड रही है। एक अधनगा, असहाय आदमी नीद में सो रहा है और नुकीली हड्डियो वाली एक काली, लम्बी, विकराल स्त्री उस पुरुष के कलेजे का खून चूस रही है।

"आजकल तुम्हारी बीवी कहाँ है ?" मैंने पूछा।

"कहा न पागलखाने मे है।"

"कभी मिलने जाते हो ?"

"जरूरत क्या है—देख नही रहे वह यहाँ भी चारों तरफ मौजूद है ?"

गजानन ने मुझे अपनी पत्नी का सच्चा फोटो दिखाया। वह वास्तव मे बहुत ही सुन्दर स्त्री थी। लेकिन शादी के बाद गजानन के दिल मे एक गहरी चिता ने घर कर लिया। उसे अपनी पत्नी की निकट उपस्थिति मे अक्सर ऐसा महसूस होता कि वह एक गहरे गड्ढे मे गिरा जा रहा है, जिसमे से निकल आने की उसमे सामर्थ्य न थी। यह आत्मघातक निराशा

धीरे-धीरे अफीम के नशे की तरह उस पर हावी होने लगी।

वह अद्भुत और आश्चर्यकारी स्वप्न देखने लगा। अजीब खौफनाक शक्ले सुन्दर स्त्रियो का रूप धरकर उसके पास आती और फिर भयकर रूप धारण कर लेती। डरकर वह उठ बैठता और हमेशा अपनी पत्नी को जागा हुआ पाता।

उसकी पत्नी ने कभी उससे कोई सवाल न पूछा, कभी हमदर्दी न दिखाई, बल्कि गुमसुम रहने लगी। धीरे-धीरे उसकी आँखे हमेशा फटी रहने लगी। गजानन को शक था कि सोते वक्त भी उसकी आँखे खुली रहती थी। और एक रात वह गजानन के सीने पर चढ बैठी। पता नही उसमें कहाँ से इतनी शक्ति आगई थी कि गजानन बहुत कोशिश करने के बाद भी उसे अपने ऊपर से हटा न सका। उसी रात वह पागल हो गई। उसने गजानन के सब चित्र फाड डाले और घर मे आग लगा दी।

गजानन ने बहुत सक्षेप मे अपनी कहानी कह डाली और फिर पूछा :

"और तुम क्या करते रहे इन पच्चीस वर्षो मे ? शादी की ?"

"हाँ," मैने कहा।

"बीवी कहाँ है ?"

"तीर्थ-यात्रा करने गई है।"

वह हँस पडा। बोला, "चलो छुट्टी हुई। कोई बच्चा भी है ?"

"हाँ, एक बेटी थी।"

"मर गई ?"

"नही, घर छोड कर चली गई। मै उसी को खोज रहा हूँ," मैने कहा। और फिर मैने उसे मगला और सदाशा के बारे में सक्षेप मे सब कुछ बता दिया।

"तो तुम्हारी और मेरी जिन्दगी बहुत कुछ एक सी-ही है," वह बोला। "जिसे तुम मूर्त्त जगत में खोज रहे हो वही मै अमूर्त्त रूप से चित्रो में अकित कर रहा हूँ।"

"तो क्या तुम समझते हो कुरूपता मौलिक है और सुन्दरता कृत्रिम ?" मैंने पूछा।

"मै कुछ नही समझता," वह बोला, "जो देखता हूँ वही चित्रित करता हूँ ?"

उस रात मै अपने होटल न लौटा। सारी रात हम दोनो बाते करते रहे। गजानन एक के बाद एक बात उँडेलता चला गया।

गजानन के मोहल्ले मे गोवर्धनदास नाम का एक आदमी रहता था। जब वह कालेज मे था कविताएँ लिखा करता था और अक्सर गजानन को सुनाता था। बी० ए० पास करने के बाद वह वकील बना, फिर कुछ साल बाद म्युनिसपल कमिश्नर बन गया। अब उसने गजानन से मिलना छोड दिया। वह गजानन को बेवकूफ और अपने आपको बहुत अक्लमद समझने लगा। वह अमीर होता गया और गजानन गरीब क्योकि अब उसकी तस्वीरो की बाजार मे माँग न रही।

गोवर्धनदास लखपति बन गया लेकिन शोहरत और कामयाबी की उसकी भूख मदी न पडी। उसने राजनीति मे पैर रखा। अब वह शहर की सफाई-सुथराई का ध्यान रखने की बजाय दस लाख आदमियो का प्रतिनिधि बन देश का विधान बनाने वाला कहलाना चाहता था। वह पार्लियामेन्ट के चुनाव मे खडा हुआ और तभी अचानक बीमार पड गया। और तब उसने एक दिन गजानन को बुलवाया।

"पेन्टर, मेरा पोरट्रेट बना दोगे ?" उसने पूछा।

"नही," गजानन ने जवाब दिया, "मै ज्यादातर वही बनाता हूँ जो मुझे अच्छा लगता है।"

"क्या तुम्हे मेरे चेहरे मे कोई भी अच्छाई नज़र नही आती ?"

"मैंने तुम्हारा चेहरा इस निगाह से कभी नही देखा।"

गजानन ने उसे टालने की बहुत कोशिश की, लेकिन वह न माना, और चित्रकार ने उसका चित्र बना दिया—एक फटे हुए अडे की तरह उसका चेहरा बनाया, जिसमें न आँखे दिखाई देती थी, न कान और

न नाक, सिर्फ मुँह की जगह एक चौडी दरार थी।

"यह क्या है ?" गोवर्धन ने हतप्रभ होकर पूछा।

"यह तुम्हारा असली रूप है," गजानन ने उत्तर दिया, "तुमने कभी अपनी आँख और कान का इस्तेमाल ही नही किया। तुम सारी जिन्दगी बिना सोचे-समझे सिर्फ भाषण ही देते रहे हो।"

"तुम ने सच कहा है, आर्टिस्ट," गोवर्धन ने आँखो में आँसू भरकर गजानन को अपने पास बिठाते हुए कहा।

गोवर्धन ने गजानन को बताया कि एक दिन वह शहर के एक कोने मे, अपने चुनाव की तैयारी मे, भाषण दे रहा था। भीड की वजह से एक औरत को अपनी मोटर रोकनी पडी। वह मोटर मे बैठी हुई उसका भाषण सुनती रही, और जब गोवर्धनदास ने उनकी ओर देखा तो उत्तर मे उसने एक तिरस्कार भरी हँसी बिखेर दी और भीड को चीरती हुई अपनी मोटर निकाल कर ले गई।

गोवर्धन फिर भाषण न दे सका। उसे अपने विकासमय जीवन में कभी कोई ऐसा आदमी न मिला था जिसने उसे हिकारत की निगाह से देखा हो और उसके मुँह पर ही उसकी खिल्ली उडाई हो, और उस औरत की हँसी ने तो गज़ब ही ढहा दिया।

गोवर्धन ने घर आकर आइने मे अपनी सूरत देखी, और वह सूरत जो हर रोज वह शेव करते वक्त सरसरी निगाह से देखता था, उसे अजीब लगने लगी। वह अपने आपको सुन्दर समझता था, लेकिन उस दिन उसे दिखाई देने लगा कि उसके चिकने-चुपडे चेहरे पर सच्चे पौरुष की झलक नही, महज़ एक बनावटी-दिखावटपन था। उसे महसूस होने लगा कि वास्तव मे वह भीरू था, छिपकर पीछे से बार करने वालो मे था। और फिर उसे अपनी ज़िन्दगी की तमाम छोटी-छोटी घटनाएँ याद आईं—किस तरह उसने अपने से कमज़ोर को दबाया था और न जाने कितने लोगों की हसरतें कुचली थीं। वह ज़िन्दगी को धोखा देना चाहता था लेकिन ज़िन्दगी ने उसकी आँखों मे ही धूल झोक दी और वह अपना

असली स्वरूप न देख सका।

"तो क्या वह फिर चुनाव मे खडा नही हुआ ?" मैंने पूछा।

"चुनाव की बात तो दूर रही, गरीब को तपेदिक हो गई," गजानन ने कहा,

"कौन थी वह औरत ?"

"अकसर यहाँ आती है, किसी दिन देख लेना।"

"अब क्या करने आती है ?" मैंने पूछा।

"गोवर्धन को मौत के घाट उतारे बिना उसे चैन नही मिलेगा। उसने डाक्टरो का इलाज बन्द करवा दिया है, और किसी भी वाहर के आदमी को गोवर्धन से मिलने नही देती। अब वह मुझे भी कभी नही बुलाता," गजानन ने कहा।

सुबह होगई और मैं गजानन से विदा लेकर अपने होटल लौट आया।

× × ×

मगला तीर्थ-यात्रा से दिल्ली लौट आई थी और उसने मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की थी। उसका पत्र मिले कई रोज हो गये थे, लेकिन मैंने जवाब नही दिया था।

एक दिन सुबह मै गजानन के घर की ओर जा रहा था और सोच रहा था कि मगला को क्या उत्तर दिया जाय। मगला की सच्चरित्रता और प्रखरता अब मेरे लिए असह्य थी जिस प्रकार कि बहुत देर तक अन्धकार मे रहने वाले को प्रकाश असह्य होता है। क्या मगला के पास वापस जाना मेरे लिए सम्भव था ? क्या जिस खोल मे से मै निकल आया था उसमे दुबारा समाया जा सकता था ?

मै इसी तरह सोचते-सोचते गजानन के घर के पास आ पहुँचा और सडक पार करने की कोशिश मे एक फुटपाथ पर खडा था। मोटरगाडियो और बसो का ताँता लगा हुआ था, और मुझे उसी तरह अपने ध्यान में खडे हुए काफी वक्त हो गया। थोडी-सी सडक साफ हुई और जैसे ही मैं आधी सडक तक पहुँचाथा कि यकायक एक मोटर मेरे ऊपर आकर ही रुकी।

मै घबरा कर गिर पडा, और जब भरोसा हो गया कि मै बच गया, मैने सिर उठाकर देखा, और देखता हूँ कि मोटर चलाने वाली सदाशा है।

"सदाशा !" मै चिल्ला उठा, और सदाशा, जैसे किसी कुस्वप्न से उसकी नीद टूटी हो, कुछ समझ न पाकर एक क्षण के लिए मुझे देखती रही, और फिर मुझे पहचान कर वह भी चिल्ला उठी, "बाबा !" वही बीचोबीच सडक पर हम दोनो आलिगन-पाश मे बँध गए, और न जाने हमारे कारण कितनी देर तक दोनो तरफ का ट्रैफिक रुका रहा। जब मुझे होश आया तो मैने देखा कि हमारे चारो ओर भीड जमा होगई थी।

सदाशा मुझे अपने घर ले आई और बोली, "बाबा, यह मेरा घर है। तुम यही रहो। मै शाम को मिलूँगी, इस वक्त मुझे कुछ काम है।" और फिर मोटर मे बैठकर, अपनी चिर-परिचित मुस्कान बिखेरती हुई, अदृश्य होगई।

वह साधारण घर न था, उसके हर कोने से समृद्धि झलकती थी। उस घर के फर्स्टक्लास फर्नीचर और साज-सामान को देखकर मै दुविधा मे पड गया कि क्या वह वास्तव मे सदाशा का घर था। नौकर-चाकरो से पूछने पर मालूम हुआ कि उस घर की मालकिन सदाशा ही थी, और मालिक कोई न था। वह शानदार मोटरगाडी, वह सुसज्जित मकान और खूबसूरत बाग सब कुछ सदाशा का ही था।

शाम को काफी देर तक उसका इन्तजार करता रहा, पर वह न लौटी, और जब रात के दस बज गए तो एक नौकरानी ने आकर कहा, "मालकिन का कुछ ठीक नही कब आएँ। आप खा-पीकर आराम फरमाएँ।"

मै भोजन कर बिस्तरे पर आ लेटा, मगर मुझे नीद न आई। मैने ग्यारह, बारह और एक के घटे सुने और उसके कुछ देर बाद सदाशा घर लौटी। मै अपने कमरे के बाहर नौकर-चाकरो से उसे पूछताछ करते सुनता रहा, और फिर दालान की बत्ती बुझ गई। वह अपने कमरे में सोने चली गई।

× × ×

दूसरे दिन सुबह जब मै सोकर उठा तो सात बज चुके थे, पर कहीं कोई नौकर-चाकर नही दिखाई दे रहा था। मालूम होता था सदाशा के घर में बहुत देर से सुबह होती थी। मै बाहर के कमरे मे आ बैठा और अखबार पढने लगा।

कुछ देर बाद बाहर दरवाजे पर घण्टी बजी और मैंने उठकर देखा कि एक नवयुवक एक बड़ा-सा गुलदस्ता लिए खडा है।

"देवी जी हैं ?" उसने पूछा।

"कौन देवी जी ?" मैंने सवाल किया।

"सदाशा देवी।"

"हैं। मगर अभी सोई हुई हैं।"

"कोई बात नही। मै इन्तजार करूंगा," कहकर वह कमरे के अन्दर चला आया और एक खाली कुर्सी पर बैठ गया। आश्चर्य के साथ मुझे देखते हुए उसने पूछा:

"आपकी तारीफ ? आपको पहले तो कभी यहाँ नही देखा ?"

"मैं सदाशा का बाप हूँ," मैंने कहा।

उसे यकीन न हुआ और वह पहले से भी अधिक आश्चर्य के साथ मुझे देखता रहा।

"क्यो, आपको विश्वास नही ?" मैने पूछा।

"नही, यह बात नही," उसने कुछ लजाते हुए कहा। "मुझे अपनी इस बात पर ताज्जुब हो रहा था कि अभी तक मैंने यह क्यों नही सोचा कि सदाशा जी का भी कोई पिता होगा।"

मैं उसकी बात का मतलब समझ न सका और ज़रा त्यौरियाँ चढा-कर मैंने उसकी ओर देखा।

"आपसे मिलकर बहुत ख़ुशी हुई," अपना हाथ आगे बढाते हुए वह बोला। "दरअसल, मै यह सोच रहा था कि देवी को जन्म देने वाला भी कोई ज़रूर बडी हस्ती होगा, देवता होगा।"

"देवी-देवता से आपका क्या मतलब है, मै कुछ समझ नही पाया," मैने कहा।

"उसी को तो देवी कहेगे जिसकी कृपा-दृष्टि से भिखारी राजा बन जाता है," वह बोला और उसके वाक्य को पूरा करने के लिए व्यगात्मक मुस्कराहट के साथ मैने कहा, "और जिसकी बुरी दृष्टि से राजा भिखारी बन जाता है।"

"यह मै नही जानता। मैने अभी तक देवी की कृपा-दृष्टि ही पाई है। लेकिन मेरे खयाल से देवी मे यह गुरण भी जरूर होगा।"

और फिर उसने बताना शुरू किया कि वह सदाशा को देवी क्यो समझता था।

एक वर्ष पूर्व बम्बई के पास एक छोटे-से रेलवे स्टेशन पर वह चाय की दुकान करता था। सुबह से रात तक अपनी दुकान पर बैठे रहकर मुश्किल से अपने बाल-बच्चो की परवरिश कर पाता था। जब वह कम उम्र का था, सोलह-सत्रह वर्ष का था, उसका विवाह हो चुका था और पच्चीस-छब्बीस वर्ष की उम्र में वह पाँच बच्चो का बाप बन गया। वह अपने बच्चो को, और अपनी बीवी को, जो सुबह से रात तक बच्चो के लालन-पालन मे लगी रहती थी, कभी पूरी तरह प्यार न कर पाया था। वह हर रात अपने बीवी-बच्चो के लिए प्यार की बाते सोचता हुआ घर जाता, पर न जाने किस अन्दरूनी मजबूरी से प्यार ज़ाहिर न कर पाता था। इस मजबूरी ने उसे हर तरफ से जकड रखा था। वह हँसना चाहता पर हँस न पाता, गाना चाहता पर गा न पाता, और सबसे बड़ी कमबख्ती यह थी कि रोना चाहने पर भी रो न पाता था। इस मजबूरी ने उसकी शख्सियत को दबाकर उसे मशीन का एक बेजान पुर्जा बना रखा था।

और एक दिन सदाशा उसे मिली। वह रेल मे कही जा रही थी, और उसने चाय मँगवाई। चाय देते समय वह सदाशा को जी भरकर देखना चाहता था, पर अपनी मजबूरी के कारण उसे अपनी आँखे नीची

करनी पडी । सदाशा उसके मन का भाव समझ गई और उसने बातचीत करना शुरू कर दिया । सदाशा उससे एक-दो दफा और मिली और उस युवक को जीवन में पहली बार मालूम हुआ कि दुनिया मे एक ऐसा भी व्यक्ति है जो उसे चायवाला न समझ कर इसान के रूप में देखना चाहता था ।

"आप सदाशा देवी के पिता हैं, और मुझे गलत न समझेंगे, इस उम्मीद से मैं यह सब कह रहा हूँ," उसने बीच में अपनी कहानी रोकते हुए कहा ।

एक दिन अलस सुबह की गाडी से सदाशा आई और उसने हमेशा की तरह चाय मँगवाई । मदन चाय ले आया और सदाशा ने हमेशा की तरह राज़ी-खुशी पूछने के बाद मुस्कराते हुए सवाल किया :

"अच्छा, यह बताओ मदन, क्या कभी तुम भी छुट्टी नही मनाते ?"

"रेलगाडिया भी तो कभी छुट्टी नही मनाती, मेमसाहब !" मदन ने अपने उत्तर को अकाट्य समझते हुए गर्व के साथ कहा ।

"लेकिन क्या रेलगाडी की तरह तुम भी लोहे-लक्कड़ के बने हो ? ......आओ, चलो मेरे साथ । अगले स्टेशन से लौट आना ।"

"लेकिन, मेमसाहब," मदन ने हतबुद्धि होते हुए कहा, "मेरा कैश-बॉक्स खुला पडा है, अँगीठी पर दूध रखा है ।"

"अच्छा, यह तो बताओ तुमने पिछले दस साल मे कितने दिन छुट्टी ली है ?"

मदन ने कुछ सोचकर कहा, "सिर्फ़ तीन दिन, जब मै बीमार पड़ा था, मेरी दुकान बद रही ।"

"वह तो मजबूरी थी," सदाशा ने कहा," घूमने-फिरने और खुशी मनाने के लिए भी कभी छुट्टी ली है ?"

"नही, कभी नही ।"

"तो दस साल मे महज एक घटे की छुट्टी लेना बेजा नही । अभी चलो ।" सदाशा ने उसे हाथ पकडकर बिठा लिया ।

अगले स्टेशन पर वे दोनो उतर गए। मदन की वापसी गाडी एक घटे बाद जाती थी। सदाशा ने कहा, "आओ कुछ देर इस जंगल में टहल आएं।"

सदाशा ने अपनी सहानुभूतिपूर्ण बातो से मदन को फिर महसूस कराया कि वह चायवाला नही, इसान है। सदाशा के साथ जगल में घूमते हुए उसे याद आया कि बचपन मे वह सोचा करता था कि किसी न किसी दिन उसके जीवन में ज़रूर चमत्कार होगा। शायद उसे कोई जादू की छडी मिल जाय, कही रास्ते में पडा हुआ कोई हीरा मिल जाय। लेकिन पिछले दस साल की कँकरीली ज़िन्दगी ने उसे सिखा दिया था कि इस दुनिया मे दो और दो मिल कर चार ही होते हैं, कभी पाँच नहीं हो सकते। मगर उस रोज़ सदाशा के साथ घूमते हुए उसकी कल्पना फिर जाग उठी, और उसे महसूस होने लगा कि वह अब भी हीरा पा सकता था। उसने बचपन मे पौराणिक कहानिया सुनी थी जिनके सब पात्रो के जीवन मे चमत्कार होता था। उस ज़माने का 'चायवाला' राजा बनकर लड़ाई के मैदान मे तलवार चला सकता था, राजकुमारी के प्रेम मे गीत रच सकता था, बूढा होने पर भी जादू के ज़ोर से जवान हो सकता था।

मदनलाल, देश-विभाजन से पूर्व, पजाब के किसी शहर के एक होटल मे नौकरी करता था। वह गाव का लडका था और उसकी अल्प सुखद स्मृतिया ग्राम-जीवन की ही थी, जगल की उस खुली हवा मे वह एकबारगी भूल गया कि उस समय उसकी बीवी शहर की एक गदी गली मे सडक के नल के नीचे कपडे धो रही होगी, कि उसके पाचों बच्चे आपस मे मारपीट, गाली-गलौज कर रहे होगे, कि उसकी दुकान पर अँगीठी में दूध उफन रहा होगा।

वे दोनो एक तालाब के किनारे एक घने पेड के नीचे जा बैठे। सदाशा ने कहा, "कोई पजाबी गीत सुनाओ," और मदनलाल ने धीरे-धीरे 'हीर राझा' की प्रेम कहानी गाना शुरू किया। उसका कठ खुलता

गया, और वह मजबूरी जो उसे गाने न देती थी, हँसने न देती थी, न जाने कहाँ गायब हो गई। उसे यह तक खयाल न रहा कि उसकी वापसी गाड़ी कब निकल गई।

एक दिन सदाशा फिर आई। उस दिन वह अपनी कार मे थी और उसके साथ एक साहब थे, जिन्होने मदनलाल को अपने नाम का कार्ड देते हुए अपने यहाँ आने का निमत्रण दिया। वह एक फिल्म प्रोड्यूसर थे और किसी विशेष भूमिका के लिए एक उपयुक्त पात्र की तलाश मे थे।

यह सब जादू की तरह हुआ। अगले दिन से ही मदनलाल रिहर्सल में जाने लगा। और रात को जब वह घर लौटता, न जाने क्यो उसका मन अपने बीवी-बच्चो के लिए उमडने लगता। अब वह अपने परिवार को एक नई दृष्टि से देखने लगा। अब वह अपनी पत्नी की सुन्दरता और व्यक्तित्व की आवश्यकताओ के प्रति जागरूक था और अपने बच्चो को भार न समझ कर अपना विकसित अंग समझने लगा। अब उसकी ज़िम्मेदारिया पहले से ज्यादा बढी हुई थी क्योकि उसकी सफलता ने, उसके व्यक्तित्व मे निहित सुप्त सभावनाओ के प्रस्फुटन ने प्रेम के साथ ही उसमें दायित्व की भावना भी जगा दी।

मदनलाल को अपनी कहानी कहते काफी वक्त हो चला था। दीवार घडी को देखकर कहने लगा, "अब इजाजत दे। आज मुझे बहुत से काम निबटाने हैं। मैंने कल ही हीरो के रोल के लिए कण्ट्रक्ट साइन किया है," और फिर मुस्कराते हुए बोला, "आज शाम को मैं अपनी बीवी के साथ हनीमून मनाने जा रहा हूँ। यह सब देवी जी की कृपा है। वह दरअसल देवी हैं और उन्हे इस दुनिया की नजरो से देखना बहुत गलत है।"

मदनलाल जा चुका था। सदाशा ने उस पर कल्याणकारी प्रभाव डाला था, यह सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। पिछले दो वर्षों की अपनी कल्पना की भयावह सदाशा और उसके वर्तमान मगलकारी रूप

के बीच सामजस्य बिठाने का मै प्रयास कर रहा था कि पीछे से सदाशा आगई।

अस्त-व्यस्त बालो में अलसाई हुई वह मेरे पास आ बैठी। वह सदा से अधिक सुन्दर दीख रही थी। मैंने भावावेश में उसका हाथ पकड़ लिया और भर्राई हुई आवाज मे पूछा

"तू कौन है सदाशा ?"

"तुम्हारी बेटी हूँ, बाबा," कहकर वह हँस पडी।

"अगर तू सचमुच मेरी बेटी होती तो मुझे इस तरह ठुकरा कर न चली आती। आखिर यह सब तूने क्यो किया ?"

"छोडो इन बातों को," उसने झल्लाते हुए कहा और अपना हाथ खीच लिया। एक लम्बे पल के लिए हम दोनो के बीच खामोशी बनी रही।"

"अभी मदनलाल आया था," मैंने कहा, "और यह गुलदस्ता दे गया है। तेरे बारे में जो कुछ सुना उससे मै तुझे एक नई नजर से देखने लगा हूँ।"

"नई पुरानी नजर तो कहने की बात है," वह बोली, "असल में तुम्हे मुझ से प्यार है। प्यार करने वाला हमेशा एक ही नजर से देखता है।"

"क्या विनय को तुझसे प्यार न था ? लेकिन तू तो हर प्यार करने वाले को ठुकराती है।"

"मैंने कभी किसी को नही ठुकराया। हाँ, यह जरूर है कि मैंने हर प्यार करने वाले को जो वह मुझ से चाहता था वह न देकर जो वह खुद अपने आपसे चाहता था, वह उसे दिखाया और दिलाया है। विनय मेरी अपेक्षा मेरी याद को, विश्वासघात की पीड़ा को ज्यादा सँजोकर रखना चाहता था, और वह उसे मिल गया।"

"और क्या जज साहब भी यही चाहते थे कि जटाजूट बढाकर दुनिया से बिलकुल अलग हो जायें ?"

"हाँ, उनकी अन्तरात्मा यही चाहती थी," सदाशा ने दृढता के

साथ घोषणा की। "......लेकिन तुम फिर पुरानी बातें ले बैठे।"

"एक बात और पूछना चाहता हूँ," मैंने कहा। "क्या मैं भी अपने आप से यही चाहता था कि मेरी बेटी मुझसे दूर हो जाय ?"

"अगर नही चाहते थे तो तुम्हे मेरी शादी की इतनी जल्दी क्या पडी थी ?"

मैं चुप हो गया। मैं उसे क्या बतलाता कि इतने दिनो से उसके पीछे सारे देश मे घूमता फिर रहा था !

"यह तो तुम खुद ही देखो," उसने कुछ सोचकर कहा, "कि अपने आपसे क्या चाहते हो ?"

लडकी ठीक ही कहती थी कि मुझे खुद ही देखना चाहिए था कि मैं बेटी को खोकर, बीवी को छोडकर अपने आपसे क्या चाहता था ?" और मुझे अहसास हुआ कि मैं उस नाटक के मध्य मे था जिसमें नारी को देखने और उसकी पूर्णता का आभास पाने की मुझे भूमिका मिली थी।

सदाशा ने दिन का खाना मेरे साथ ही खाया। खाते वक्त कहने लगी, "बाबा, माफ करना। सुबह मैंने तुमसे गलत कहा था कि तुम भी मुझसे दूर होना चाहते थे। अगर ऐसा होता तो इस वक्त भी तुम मेरे पास न होते। सयोगवश मिलकर भी अलग हो जाते। मैं जानती हूँ, बाबा, तुम मुझे कितना प्यार करते हो, और मुझे इस बात का दुःख है कि मै तुम्हारी उम्मीदे पूरी न कर सकी।"

भोजन के बाद वह तुरन्त ही बाहर चली गई और फिर रात को एक बजे के बाद घर लौटी।

× × ×

दूसरे दिन सुबह उठकर जब मैं बैठक मे पहुँचा तो देखा कि सदाशा अकेली बैठी चाय पी रही थी।

"आज तू बहुत जल्दी उठ गई ?" मैंने पूछा। "मालूम होता है तेरा कोई नियम नही, कभी छः बजे उठती है, कभी दस बजे।"

"मेरा अनियम ही मेरा नियम है," कहकर वह हँस पडी, और मेरे

लिए चाय बनाने लगी। चाय का प्याला आगे बढाते हुए मुस्करा कर बोली :

"एक बात मै देख रही हूँ, बाबा, कि तुम पहले से काफी जवान हो गए हो। याद है दिल्ली के मकान मे तुम्हारी जवानी की एक तस्वीर टँगी है। तुम ठीक वैसे ही लगते हो, सिर्फ फर्क यह है कि अब तुम्हारे सब बाल सफेद हो गए हैं।"

चाय की एक-दो घूँट पीने के बाद मैंने गम्भीरता से पूछा, "क्या कभी सोचा है कि एक दिन तू भी बूढी होगी और तेरा यह सुन्दर शरीर शिथिल पड जायगा ? तब क्या होगा ?"

"क्या यह भी कोई सोचने की बात है ?" कह कर वह हँस पड़ी। "बुढापे की बात वे ही सोचते हैं जिनकी जिन्दगी अधूरी होती है, जिनके मन मे अपने आपको पूरी तरह व्यक्त न कर पा सकने का अपराध छिपा रहता है। यहा बबई मे मै एक चित्रकार को जानती हू। वह अस्सी वर्ष का है। उसने पाच वर्ष की उम्र से चित्र बनाना शुरू किया था, और वह कहता है कि पचास वर्ष की उम्र में जाकर उसने रेखाओ के स्वभाव को समझा। सत्तर वर्ष की उम्र मे वह रेखाओ से बने आकारो के अन्द-रूनी नियमो से परिचित हुआ। वह कलाकार है और उसकी कला सबधी सब बाते समझ मे नही आती, लेकिन इतना जाहिर है कि अगर हम पाच बरस के बच्चे को पच्चीस बरस का जवान देखना चाहते हैं, तो क्यो पच्चीस बरस के जवान को पचास बरस का बूढा देखने मे घब-राते हैं ?"

सदाशा की बात विचारणीय थी। मै सोचने लगा कि वास्तव में बुढापा बुरा नही, वह तो एक आवश्यक परिणति है, उस कठिन कार्य की पूर्ति है जो हर व्यक्ति को अपने जन्म के साथ लेकर आना पडता है। मैं भी अपनी परिणति के निकट पहुँचता जा रहा था। सदाशा मुझे मिल चुकी थी और मैं सदाशा की उस आत्मा के निकट भी पहुँचने लगा था जिसका अस्तित्व ही मगला को स्वीकार न था, या जो अन्य लोगों को इतनी

फरेबी दिखाई देती थी कि वे उसे पकड न पाते थे।

सदाशा मुस्करा रही थी। कहने लगी, "आओ, बाबा, समुद्र-स्नान करने चले," और जब मैने उत्तर मे कहा, "तू ही चली जा," तो वह न मानी। आखिर वह इस बात पर राज़ी हो गई कि अगर मैं नहाना न चाहूँ तो भी उसका साथ ज़रूर दूँ।

अपनी कार मे बिठा कर वह मुझे एक निर्जन समुद्र-तट पर ले गई। रेतीला हिस्सा पार कर हम पानी के किनारे आ बैठे और समुद्र की लहरे उठ उठ कर हमारे चरण धोने लगी। सदाशा स्वीमिंग कॉस्ट्यूम मे थी। उसकी बाह पर कधे के पास एक लम्बा दाग था, जो मैंने पहले कभी न देखा था।

"क्या कभी दीवार फाँदने की कोशिश मे यह चोट लगी थी?" मैंने उसकी बाह पकडते हुए पूछा।

वह कुछ न बोली। उसके दातो के बीच एक हेयरपिन था और वह अपने बालो को सॅवार कर तैराकी टोपी पहनने की तैयारी मे थी। तभी मुझे उसके भूरे बालो के बीच भी एक गहरा दाग दिखाई दिया।

"और सिर मे यह चोट कैसे लगी?" मैने पूछा।

हेयरपिन अपने बालो मे खोसकर, तैराकी टोपी पहनकर, मुस्कराती हुई वह उठी और एक साथ दौड कर समुद्र की लहरो में विलीन हो गई।

एकाएक मुझे कलकत्ते की वह बरसाती रात याद आई जब डॉ० अहमद ने एक लडकी से ठगे जाने की अपनी कहानी सुनाई थी। तो क्या यह वही जरीना थी जो मोहम्मद उमर को धोखा देकर और डॉ० अहमद की आँखो मे धूल झोककर अब अपने बाप को बेवकूफ बनाने की कोशिश कर रही थी? तो क्या वह सम्पत्ति और समृद्धि, जिसे प्राप्त करने को सदाशा का साधन मैं अभी तक न जान पाया था, डॉ० मोहम्मद उमर के सर्वनाश का फल था?

एक लहर के साथ सदाशा किनारे आ लगी और हाँफती हुई मेरे पास आकर बोली, "एक डुबकी और लगा आऊ, फिर चलते हैं घर।" उसके

शरीर से पानी चू रहा था। दम लेने का उसे मौका देने से पहले ही मै पूछ उठा :

"क्या कभी तू कलकत्ते मे थी ?"

"नही तो," कह कर वह उठने लगी लेकिन मैने उसकी बाह पकड कर अपने पास बिठा लिया और पूछा ।

"झूठ मत बोल। क्या तू डॉ० अहमद को नही जानती ?"

वह एक अजीब दृष्टि से मुझे देखने लगी और मैंने अपने जीवन मे पहली बार हिरनी जैसी चौकडी भरने वाली सदाशा को आश्चर्यचकित हो ठिठक कर रह जाते पाया। उसने मेरे प्रश्न का उत्तर न दिया, और इससे पहले कि वह कोई नई झूठ गढ सके, मैंने फिर पूछा।

"और क्या तू मोहम्मद उमर को भी नही जानती ?"

उत्तर मे उसने अपनी गीली बाहे मेरे गले मे डाल दी, और सिर नीचा कर बडे आर्त्त स्वर में कहा .

"ओह, बाबा ! मुझे न मालूम था कि इतने दिनो से तुम मेरा पीछा करते फिर रहे हो !"

उसके भीगे शरीर के स्पर्श से मेरा कोट गीला हो चला था। मैने आहिस्ता से उसे हटाते हुए कहा :

"लेकिन तुझे यह सब करने की क्या जरूरत थी ? क्या तू किसी के भी साथ ईमानदारी नही बरत सकती ? तेरा क्या भरोसा, क्या पता तू मुझे ही बेवकूफ बनाने की कोशिश कर रही हो ?"

"नही, बाबा, ऐसा मत कहो," उसने नीची नजर कर काँपती हुई आवाज मे कहा। "मुझे आज मालूम हो गया कि तुमने मुझे सचमुच प्यार किया है। अब मैं तुमसे कभी झूठ न बोलूंगी, कभी धोखा न दूंगी, वादा करती हूँ।" उसने सिर ऊपर उठाया और उसकी डबडबाई आँखो से आँसू ढुलक पडे।

"अच्छा, अब कपडे बदल और घर चल," मैंने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा।

घर की तरफ कार मुडा कर एक गहरी सास लेते हुए वह बोली .

"बाबा, तुमने तो मुझे बिल्कुल नगा देख लिया। अब तुम जो चाहो पूछो।" उसकी आवाज मे कम्पन था मानो किसी अनजान, अथाह जल मे कूदने से पूर्व वह बोल रही हो।

मैं कुरेद-कुरेद कर सदाशा को कष्ट न पहुँचाना चाहता था, लेकिन अगर रुपये-पैसे के लिए ही उसने यह सब किया था तो उसमे और एक साधारण वेश्या मे क्या अन्तर था ?

"मुझे न मालूम था कि तुझे रुपये-पैसे से इतना मोह है," मैंने दु खी होते हुए कहा।

"मोह तो मुझे अपने आपसे है और रुपया मेरा चाकर है," वह दृढता के साथ बोली।

"अपने आपसे मोह रखना भी क्या कोई तारीफ की बात है ?" मैंने पूछा।

"जो अपने आप को प्यार नहीं करता वह दूसरे को कभी प्यार न कर सकेगा। वह सिर्फ तुम्हारी तरह गढे-गढाए पुराने आदर्शों से प्यार करेगा। और जहा तक रुपये-पैसे का सवाल है, मैं समझती हूँ कि आज दुनिया में आजादी की जिन्दगी के लिए रुपया एक जरूरी चीज है, हालाकि मे मानती हूँ कि सिर्फ रुपये से ही आजादी नही मिलती।" वह अपने सामने सड़क पर नजर गड़ाए मोटर चलाती जा रही थी।

"लेकिन मुझसे गलतिया भी हुई हैं, बाबा," सदाशा की आवाज एक साथ नरम पड़ गई। "शुरू मे मै जिस चीज़ को खोल न पाती थी, समझ न पाती थी, बना न पाती थी, तोड देती थी। मोहम्मद उमर भी इसी तरह तबाह हुआ, हालाकि उसके लिए यह एक तरह से जरूरी था। उसे सारी दुनिया ही दुश्मन दिखाई देती थी और उसकी हिफाजत छीन कर ही उसे इस व्यर्थ के भय से बचाया जा सकता था।"

घर आ गया और पोर्च में गाडी रोकते हुए वह बोली, "लेकिन अब मैंने जाना है कि प्रेम से हर चीज खुल सकती है, बन सकती है, समझी

जा सकती है । तुमने भी मुझे जितना समझा है प्रेम से ही समझा है, तर्क से नही, भावना से समझा है, बुद्धि से नही ।"

× × ×

सदाशा धीरे-धीरे मेरे निकट आने लगी। अब वह दिन का अधिकाश समय मेरे साथ ही बिताती थी। अक्सर गर्मी की लम्बी दोपहर मे हम शतरज खेलने बैठते और शाम तक बैठे रहते । एक दिन बाज़ी खत्म होने के बाद मैने पूछा ·

"क्या तुझे यह भी याद है कि तेरी कोई मा है ?"

"क्यो नही," वह तत्परता से बोली, "लेकिन मा का स्वभाव मुझसे बिलकुल उलटा है । मा तो बहुत सख्त हैं, वह अपने लिए सख्त हैं और इसीलिए दूसरो के लिए भी सख्त हैं, अपने आप से प्यार नही करती और इसीलिए दूसरो से भी हमदर्दी नही रखती ।"

"शायद कुछ दिनो बाद वह यहा आ जाय," मैने कहा । बम्बई के मेरे पुराने पते पर उसके दो पत्र आ चुके थे और उसी रोज सुबह तीसरा मिला था जिसमे लिखा था कि जवाब न मिलने पर वह खुद बम्बई चली आएगी ।

सदाशा ने उत्तर न दिया । उसकी भवे कुछ चढी हुई नजर आईं ।

"मा का आना तुझे पसन्द नही ?" मैने पूछा ।

"नही, यह बात नही," वह धीरे से बोली ।" मा मेरे तौर-तरीके पसन्द न करेगी, और फिर बात-बात मे कहा-सुनी होगी । क्या फायदा ?"

"तूने तो हर चीज़ को प्रेम के बल से बनाना सीख लिया है न !" मैं बोला, "क्या तू अपनी मा को ही न समझा सकेगी ?"

मैंने सदाशा से व्यग न किया था और न उसका ही यह निरा दभ था कि वह हर बिगडी चीज़ को प्रेम के बल बनाना सीख रही है । सदाशा के साथ कुछ दिनो रहकर मैं देख चुका था कि उसे हर चीज से लगाव था, वह किसी भी वस्तु के प्रति उदासीन न थी । रास्ते चलते

वह कभी किसी औरत की साडी, किसी भिखारी की पुकार, किसी कोने में उगा हुआ छोटा-सा फूल, किसी आदमी के चलने का ख़ास तरीका—सब चीज़ो से प्रभावित और सम्बन्धित हो जाती थी। और अगर वह चीज़ उससे टकरा जाती तो वह उसे अपने आपसे और अपनी जिन्दगी से ज़ुदा न कर पाती थी।

घर के नौकर-चाकरो से उसका बर्ताव दोस्ताना था। उसका माली उसे फूलो का गुच्छा भेट कर उसके पास ही सोफे पर बैठकर बातें कर सकता था, उसका मोटर क्लीनर उससे फिल्मो पर बहस करता था, और उसका बावर्ची तो खाना परोसते वक्त उसके सामने ही सीटी बजाता रहता था।

उसका यह तरीका, जिसे वह प्रेम का तरीका कहती थी, विवेक-शून्य न था। वह अपने विवेक की सहायता से ही हर वस्तु से अपना सम्बन्ध स्थापित करती थी। और यह सब सोच कर ही उस रोज मैंने उससे अपील की .

"जरा सोच, तुझे अपनी मनचाही आज़ादी मिल गई, मुझे अपनी खोई बेटी मिल गई, और कितना अच्छा हो कि मगला को भी अपने बिछुडे पति-पुत्री मिल जायें, और फिर हम सब एक दूसरे के व्यक्तित्व का आदर करते हुए मिलकर रह सके।"

"बाबा, आश्चर्य है तुम्हे बच्चो की तरह अब भी वही कहानी पसन्द आती है जिसके अत में मा-बाप, बेटे-बेटी सब मिल जाते हो और हमेशा-हमेशा ख़ुश रहते हुए ज़िन्दगी गुजार देते हो।"

"तो क्या यह सभव नही ?" मैंने पूछा।

उत्तर मे सदाशा बोली। वह कहती भी क्या, मंगला और सदाशा समानान्तर रेखाएँ थी जो कभी न मिल सकती थी। मगला पार्वती थी—पर्वत की तरह अडिग, और सदाशा गंगा थी—गगा की तरह प्रवाहमयी।

सदाशा उठ खडी हुई और अपने कमरे में चली गई। कुछ देर बाद

कपडे बदल कर बाहर चल दी, और फिर हमेशा की तरह बहुत रात गए घर लौटी।

× × ×

सदाशा प्राय हर रोज ही रात को देर से घर लौटती थी। मैंने इस बारे मे, या फिर किसी भी बारे में उससे पूछताछ करना बहुत कम कर दिया था, क्योकि मै जान गया था कि दो व्यक्तियो के परस्पर सम्बन्ध में एक अवस्था ऐसी भी आती है जब सवाल पूछकर कुछ हासिल नही किया जा सकता। सदाशा अब मेरे लिए पहेली न थी, मगर फिर भी ऐसी तो थी ही जिसके बारे मे नही कहा जा सकता था कि वह कब क्या कर बैठे। इतना मै समझ गया था कि वह किसी नये प्रयोग मे लगी थी, किन्तु वह प्रयोग कैसा था—ध्वसात्मक या रचनात्मक, यह जानने को मैं उत्सुक था।

और एक दिन, जब वह नित्य की तरह सजधज कर बाहर जाने के लिए तैयार थी, मैं पूछ ही बैठा कि वह रात को इतनी देर तक कहाँ रहती थी। शाम को बाहर जाते समय कुछ गम्भीर हो जाती थी, और शायद यह भी मेरी उत्सुकता का एक कारण था।

उत्तर देने से पूर्व एक क्षण के लिए उसने कुछ सोचा और फिर बोली, "आओ, बाबा, आज तुम भी चलो।"

मैं उठ खडा हुआ और उसके साथ हो लिया।

वह मुझे गोवर्धनदास के घर ले आई। गोवर्धनदास ने लेटे-लेटे ही हमारा स्वागत किया। सदाशा के साथ मुझे देखकर उसे कुछ अकुलाहट और निराशा हुई।

सदाशा ने परिचय कराया। "यह मेरे पिता हैं और आजकल मेरे साथ ही रहते हैं, और आप मेरे मित्र गोवर्धनदास हैं।"

मैंने उस समय यह बताना उचित न समझा कि उसके बारे मे गजाननराव से मै पहले ही जान चुका था। मैं सदाशा के इस नये प्रयोग को अपनी आँखो से देखना चाहता था। अभी तक जो कुछ भी मैंने

सदाशा के बारे मे जाना था, दूसरो से सुनकर ही जाना था।

"आपको क्या तकलीफ है?" मैने सहानुभूति प्रकट करते हुए पूछा।

"तपेदिक," उसने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

सदाशा के हाव-भाव से मालूम हुआ कि वह बीमारी के बारे में बात न करना चाहती थी, लेकिन मैं पूछ चुका था.

"किसका इलाज है?"

गोवर्धनदास ने कृतज्ञता के साथ सदाशा की ओर इशारा किया।

"लेकिन फिर भी किसी डाक्टर से सलाह-मशविरा तो लेते ही होगे।"

"जी नही। डाक्टरो की राय मे मुझे छ महीने पहले ही मर जाना चाहिए था, और चूँकि मैं नही मरा वे मुझे और मैं उन्हे शक की निगाह से देखने लगा हू," कहकर वह एक फीकी हँसी हँस पडा।

"अच्छा, छोडो इन बातो को," सदाशा ने अधिकार के साथ कहा, "यह बताओ आज दिन भर क्या करते रहे?"

उत्तर में एक बाल-सुलभ हँसी उसके मुख पर खेल गई। उस हँसी मे लज्जा थी और उल्लास था।

"बाबा, यह कवि हैं," सदाशा बोली। "तुम भी तो पहले कविताओ के शौकीन थे। तुम्हे इनकी कविताएँ जरूर पसन्द आएँगी।"

मेरे और सदाशा के बार-बार आग्रह करने पर वह कविता पढने के लिए तैयार हुआ, और उसने अपने बिस्तरे के नीचे से एक कापी निकाली।

"मैंने बहुत से भाषण दिए हैं, वह बोला", "लेकिन कविता पढना मेरे लिए एक नया अनुभव है। कविता इतनी निजी चीज़ है कि उसे हरेक के सामने पढना उचित नही। लेकिन आप लोग तो अपने ही आदमी हैं," कहकर उसने एक कविता पढना शुरू किया। उसके प्रौढ मुख पर लज्जा का भाव उतर आया।

उसने कई कविताएँ सुनाईं। वे मामूली कविताएँ थी, एक अर्थ में कविताएँ भी न थी, लेकिन उनमे एक ऐसी बाल-सुलभ आत्मानुभूति थी

जिससे मैं प्रभावित हुए बिना न रह सका। वह, वास्तव मे, बालक बन गया था और उसकी कविताओ मे बच्चो जैसी ताजगी थी। और मुझे बाइबिल के वे शब्द याद आए जिनमे कहा गया है कि मनुष्य जब तक बालक नही बनता स्वर्ग के द्वार उसके लिए नही खुल सकते।

"कविता ही मेरी औषधि है," उसने कहा। "कविता लिखने से पूर्व मुझे अपने अपकृत्यो की याद दिन-रात सताती रहती थी। रात को जब मै सोता मुझे लगता मेरे शरीर पर दीमक और चीटियाँ चल रही हैं, जिन्हे दूर हटाने की मुझ मे सामर्थ्य न थी। मुझे लगता मेरे बिस्तरे के नीचे छिपकलियो ने अण्डे देकर असंख्य छिपकलियाँ पैदा करदी हैं। मुझे इस जन्म मे ही नरक का पूर्वाभास होने लगा था। मै जानता था मुझे दण्ड मिला है, और डाक्टर को बुलाकर ईश्वरीय दण्ड की इस प्रक्रिया को रोकना न चाहता था।"

रात को काफी देर तक हम बातें करते रहे, और जब गोवर्धनदास से विदा लेकर हम घर लौटे तो रास्ते मे मैंने सदाशा से कहा

"मै गोवर्धनदास के बारे मे पहले ही सुन चुका था। गजाननराव मेरा दोस्त है और इसी मोहल्ले मे रहता है। उसने मुझे सब कुछ बता दिया था।"

"कौन वही गजाननराव जो सब औरतो को खतरनाक समझता है और उनकी खौफनाक शक्ले बनाता है ?" उसने आश्चर्य के साथ पूछा और बोली, "वही असल में गोवर्धन की तपेदिक का कारण है।"

"लेकिन," मैंने कहा, "उसके मुताबिक तो तेरी ख़तरनाक हँसी की वजह से ही बिचारे गोवर्धन को तपेदिक हुई है।"

"यह झूठ है," वह बोली, "मेरी हँसी ने गोवर्धन को सिर्फ अपने बारे में संजीदगी के साथ सोचने के लिए मजबूर किया। लेकिन गजानन ने न जाने कौनसी पिछली दुश्मनी निकालकर उसकी ऐसी तस्वीर बनाई कि जिसे देखने के बाद गोवर्धन फिर उठ न सका। पहले उसे भूख लगना बन्द हुआ, फिर बुखार रहने लगा और फिर खून की उलटियाँ होने लगी।

अगर मेरी वजह से तपेदिक हुई होती तो वह मुझे अपने घर मे कभी पैर नही रखने देता। जब से मैं मिली हूँ उसकी हालत दिन-ब-दिन अच्छी होती जा रही है। अब वह गजानन को अपने घर नही आने देता। अगर गजानन का वश चलता तो बिचारा गोवर्धन कभी का चल बसा होता।"

सदाशा ने बताया कि उस दिन जब वह भीड को चीरती हुई और सभा भग करती हुई अपनी मोटर निकाल कर ले गई थी, गोवर्धनदास ने उसकी गाडी का नम्बर नोट कर लिया था। और एक दिन, जब गोवर्धन की हालत बहुत खराब हो चुकी थी, उसने सदाशा को बुलवाया।

सदाशा फौरन ही आई। गोवर्धन इस आशा में था कि वह भी गजानन की तरह उसके जीवन की निरर्थकता और ज्यादा खोलकर, और अधिक गहराई से दिखाएगी और इस प्रकार उसका निराशामय जीवन शीघ्र ही समाप्त हो सकेगा। वह अपनी तकलीफ से बेहद तंग आ चुका था। लेकिन सदाशा का आंतरिक विश्वास था कि गोवर्धन निश्चय ही स्वास्थ्य-लाभ करेगा, और उसने अपना यह विश्वास अपनी पूरी शक्ति के साथ गोवर्धन के सामने प्रकट किया।

वह हर रोज़ गोवर्धन के घर आने लगी और धीरे-धीरे गोवर्धन के निराशापूर्ण जीवन में नित्यप्रति सदाशा की प्रतीक्षा करना एक सुखद नियम बन गया। गोवर्धन को अपने बीस-पच्चीस वर्ष के अत्यधिक व्यस्त जीवन में स्त्री का सच्चा प्रेम पाने का कभी अवकाश न मिला था। प्रेम की राह में बड़ी गहरी खाइयाँ हैं जिन्हे पार करने के लिए हर प्रेमी को खुद पुल खडा करना होता है, और चूंकि गोवर्धनदास बटन दबाकर हर चीज़ मुहय्या करने का आदी हो चुका था, उसे यह विकट रास्ता पसन्द न था। लेकिन सदाशा से मिलने के बाद उसे अहसास होने लगा कि उसने अपने जीवन में एक और बहुत बडी चीज़ खोई थी।

सदाशा जब कभी गोवर्धन से उसके अतीत जीवन के बारे में पूछती उसका चेहरा विकृत हो उठता और फिर उसे वही अनाचार और अन्याय

का पथ दिखाई देता जिस पर वह पिछले पच्चीस-तीस वर्षों से चलता आया था। अत. सदाशा ने उसका बचपन उठाया क्योंकि वह जानती थी कि क्रूर से क्रूर व्यक्ति का भी आरभिक बाल्यकाल अन्य सब बालको की भाँति निर्दोष और निष्कलक होता है।

बचपन की याद कर गोवर्धन मे एक नई जान आ गई। उसे अपनी माँ का नि.स्वार्थ प्यार याद आया, बाग-बगीचो के वे दृश्य सामने आए जहाँ वह अपने साथियो के साथ खेला करता था। और फिर उसे याद आया कि उसने सोलह-सत्रह वर्ष की उम्र मे कविता लिखना शुरू किया था। अपने मित्रो को कविताएँ सुना कर वह कितना खुश हुआ करता था।

अब सदाशा और गोवर्धन हर रोज बैठकर अपने बचपन के दृश्यो की पुनर्रचना करने लगे। सदाशा एक कुशल कहानीकार की तरह ऐसी मनगढत घटनाएँ सुनाती जिनसे प्रेरित होकर गोवर्धन बोलने लगता। वह बतलाता उसने पहला सरकस कब देखा था, तैरना कैसे सीखा था, गाना सीखने की उसकी कितनी तमन्ना थी, वगैरह वगैरह।

सदाशा की मदद से गोवर्धन ने अपने मौजूदा जीवन की कड़ी अपने बचपन से जोड ली, और वह फिर कविता करने लगा, और स्वास्थ्य-लाभ करने लगा। जब मै उससे मिला था उसे तपेदिक का मरीज़ किसी हालत में नही कहा जा सकता था।

दुनिया चाहे कुछ भी कहे, मुझे सदाशा के कल्याणकारी प्रभाव के बारे में कोई सन्देह न रहा। उसके इस सुकृत्य को खुद अपनी आँखों से देखकर मैं गद्गद हो उठा। लेकिन तब भी मैं यह न समझ पाया था कि सदाशा के इस सुकृत्य के पीछे क्या प्रयोजन था, क्योकि इतना तो निश्चित ही था कि वह परोपकार की भावना से प्रेरित होने वाली जीव न थी। परोपकार की भावना उसे अहमन्यता नज़र आती थी।

सदाशा से मैने इस बारे में पूछा लेकिन वह कुछ साफ़ बता न सकी, कहने लगी :

"बाबा, तुम्हारे सवालों का जवाब देना बहुत मुश्किल है। समझ में नहीं आता तुम इतने सवाल क्यो पूछते हो, और जब पूछने बैठते हो तो इतनी किताबी भाषा में पूछते हो जिस का जवाब देना मुश्किल हो जाता है।"

"लेकिन बेटी," मैंने कहा "यह तो तू भी समझती है कि कोई काम अच्छा होता है, और कोई बुरा। मैं सिर्फ़ यही जानना चाहता हूँ कि गोवर्धन की भलाई करने मे तेरा क्या अभिप्राय था?"

"यह तो शायद मैं भी नही जानती," गंभीरता के साथ सोचते हुए वह बोली। "लेकिन एक बात है—मैं किसी काम को करते वक्त यह नही सोचती कि वह अच्छा है या बुरा। मैं कैसे कहूँ मैंने कभी यह सोचा तक नही कि मैं गोवर्धनदास की भलाई कर रही हूँ। वह, या फिर कोई भी जो मेरे जीवन में आता है मुझे अपने से अलग नही दिखाई देता। जब अखबार में पढती हूँ कि एक आदमी मोटर के नीचे दबकर मर गया तो मुझे कोई खास दुःख नही होता। दूसरे लोग जो दुःख प्रकट करते हैं उनका दुःख भी क्षणस्थायी होता है। अगर वही आदमी उनके जीवन में आ जाय तो वे दुःख की बात भूल जायेंगे और उससे दूर रहना चाहेंगे। लेकिन अगर वह आदमी मेरी जिन्दगी में आता है, और जितना ज्यादा नजदीक आता है, उतना ही मै उसके बारे में सोचूँगी क्योकि मेरी अपनी निजी जिन्दगी की निगाह से उसमें दिलचस्पी लेना मेरे लिए लाजिमी हो जाता है।"

मैं सदाशा की बात का उत्तर न दे सका, उत्तर देना ज़रूरी भी न था। मैं चुपचाप बैठा सोचता रहा कि सदाशा ने हर चीज की परिभाषा बदल दी थी। उसका तरीका किसी चीज को निष्पक्ष, निरपेक्ष भाव से देखना नही, बल्कि उस चीज़ से सबंधित होकर लगाव के साथ देखना था। लगाव बिना सृजन भी कैसे हो सकता है?

मैं मुग्ध होकर सदाशा को देखता रहा और वह मुस्कराती रही।

"पूछ लो, बाबा, पूछ लो," वह मुस्कराती हुई बोली, "जो कुछ

पूछना चाहते हो, एक बार में पूछ लो।"

"मेरा एक ही सवाल है," कहकर मै उठ खडा हुआ। "तू आखिर है क्या ?"

"मैं अगम्य हू, आत्माभिमानी हूं, रहस्यमयी हूं, सब सवालों से परे हू, और फिर भी सब मर्दों के लिए सब चीज़ हू," कह कर हँसती हुई वह दूसरे कमरे में चली गई।

× × ×

सदाशा की कोई नियत दिनचर्या न थी। जैसा कि उसने स्वय कहा था उसका अनियम ही उसका नियम था। कभी वह सारे दिन गायब रहती, घर में किसी से बात तक करना पसन्द न करती, नौकरो पर झुँझलाती-झल्लाती रही—यह भारीपन उसके सृजनात्मक प्रयोग के दिनो दिखाई देता था। तब उससे कोई जरा-सी बात पूछना भी मुश्किल हो जाता था। लेकिन कभी-कभी सारे दिन घर में ही रहती, नौकरो-चाकरो के साथ दिल खोलकर हँसती-खेलती या दिन भर आलस्य के साथ बिस्तरे मे ही पड़ी रहती, बिस्तरे में ही खाना खाती—यह हल्का-पन उसके निष्क्रिय चिन्तन के दिनो दिखाई देता था। इन दिनों अगर कोई उसे गाली दे देता तो भी हँसती रहती थी।

एक ऐसे ही दिन मै अकेला उसके ड्राइग रूम में बैठा था। मुझे उसका ड्राइग रूम सबसे ज्यादा पसन्द था। कलात्मक चित्रो और सुरुचि-पूर्ण फर्नीचर के बीच में घटों अकेला बैठा रहता था। सदाशा ने पीछे से आकर कहा :

"बाबा, तुम बुड्ढों की तरह बाहर के कमरे में रखवाली करने क्यों बैठ जाते हो ?······आओ, एक बाजी शतरज की हो जाय।"

शतरंज बिछ गई और मोहरे चलने लगे। सदाशा हँस कर बोली, "जानते हो बाबा, जब मैं जीतना चाहती हू मुझे कोई नही हरा सकता।"

"लेकिन कई बार तू मुझ से हारी भी तो है," मैंने कहा।

"वह तो जान-बूझकर हारी हू। इस बार हराग्रो तो जानू," कह कर उसने चुपके से अपने घोडे का घर बदल दिया।

मैने उसका हाथ पकड़ कर कहा, "बेईमानी करती है!" और वह हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई।

तभी सामने का दरवाज़ा खुला और मंगला आ खडी हुई। उसके धवल वस्त्र धूल-धूसरित थे और श्वेत केश अस्त-व्यस्त।

मैंने और सदाशा दोनो ने एक साथ उठकर उसका स्वागत किया और अपने पास ला बिठाया।

उसके रूप-रग को देखकर मुझे एक धक्का-सा लगा। आखिर उसने विधवा जैसे वस्त्र क्यो धारण कर रखे थे! आखिर उसके बाल एक साथ इतने सफेद कैसे हो गए? उसका मोटापा एक साथ कहाँ पिघल गया, और मुंह के दोनो कोनो पर झुर्रियाँ कैसे पडने लगी? लेकिन यह सब बाते उस वक्त मैंने उससे न पूछी।

मैने उससे दिल्ली का हाल-चाल पूछना चाहा, तीर्थ-यात्रा के उसके अनुभवो के बारे मे जानना चाहा, मगर मगला के उत्तर से ऐसा लगा मानो उसके लिए दुनिया खत्म हो चुकी थी, हर चीज एक गुज़रे ज़माने की थी, वर्तमान भी अतीत था।

मगला का नैराश्य-भाव स्पष्ट था। सदाशा ने बात बीच में रोकते हुए कहा, "बाबा, बातचीत के लिए बहुत वक्त पडा है। आज माँ आई हैं, आज हम खुशी मनाएँ। आओ, हम सब बाहर घूमने चलें।"

मैंने मंगला से पूछा, "चलोगी?"

"जैसे तुम लोगो की इच्छा," उसने अन्यमनस्क भाव से कहा।

"तो आओ हम सब जल्दी-जल्दी तैयार हो जायँ," सदाशा अपनी जगह से उछलती हुई बोली।

उस दिन घूमने-फिरने में बातचीत का ज्यादा मौका न मिला। लेकिन जब रात को हम घर लौट कर आए और सदाशा अपने कमरे में जा चुकी, मैं मंगला का हाथ पकड़ कर उसे अपने कमरे में ले आया।

कमरे के अन्दर आते ही वह मुझसे लिपट कर फूट-फूट कर रोने लगी। रोते-रोते उसकी आँखे सूज गईं, आँचल भीग गया लेकिन उसने रोना बद न किया। जब-जब मै रोने का कारण पूछता वह और रो पडती। आखिर मैने उसे समझाने-बुझाने और चुप कराने की कोशिश छोड दी और उससे अलग हटकर अपने पलँग पर जा बैठा। वह वही अलमारी के सहारे खडी रोती रही।

अत मे, बहुत देर बाद जाकर वह चुप हुई और आँसू पोछने लगी।

बात करने का मौका पाकर मैं उसके पास उठकर गया और उसके दोनो कधो पर हाथ रखते हुए पूरी सहानुभूति के साथ मैंने पूछा .

"मगला, तुम इतनी रोई क्यो हो ? आखिर हुआ क्या है ?"

उसके होठ एक बार फिर कॉप उठे और आँखे फिर भर आईं। "तुम्हे अभी तक यह भी पता नही कि हुआ क्या है, असली अफसोस तो यही है।"

मंगला के इस वाक्य ने मुझे अनजाने ही अपराधी बना दिया। मैंने सोचा जरूर ही मुझसे कोई बहुत बडा अपराध हुआ है जिसकी वजह से मंगला अपनी जड़ से हिल गई है।

"देवी, मेरा क्या अपराध है, कुछ तो बताओ न ?" मैंने याचना करते हुए पूछा।

"तुम्हारे रहते ही मै विधवा बन गई, यह कोई अपराध नही। पति की त्यागी हुई पत्नी की तरह अकेली तीर्थ-यात्रा करती रही, यह कोई अपराध नही। घर लौटकर आने पर तुम्हे न पाया, तुमने दो साल तक खबर भी न ली कि मै जिन्दा हूँ या मरी, यह कोई अपराध नही। पत्र लिखने पर भी तुमने उत्तर न दिया, यह सब तुम्हारा अपराध नही, मेरा अपना दुर्भाग्य है।"

मैने मंगला की बात का जवाब न दिया हालांकि मैने कभी न चाहा था कि वह विधवा का वेश बनाए और तीर्थ-यात्रा करने भी वह खुद अपनी मर्जी से गई थी। मेरी इतनी ग़लती ज़रूर थी कि मैने उसके

पिछले पत्रो का उत्तर न दिया था।

"अगर मुझे छोडना ही था तो शादी का ढोग क्यो रचा था ?" वह बोली, "शायद मुझे उबारने के लिए, क्योकि तुम्हारे खयाल में जीवन भर मेरा विवाह न हो सकता था, तुमनें मुझ पर दया की, मेरा उपकार किया, झूठा आश्वासन दिला कर। और फिर मुझे छोड दिया बुढापे में जाकर, जब मेरा कोई सहारा न रहा, जब मेरा अपना शरीर भी मेरे खिलाफ हो गया। तुमने मेरे साथ बहुत बडा अन्याय किया है और तुम समझ नही पा रहे कि तुमने क्या किया है। तुम मेरे सबसे बडे शत्रु हो।"

"यह सब तुम क्या कह रही हो, मगला," मैंने उसका कन्धा झकझोरते हुए कहा।

"मैं सच कह रही हूँ, तुमने मुझे कभी प्यार नही किया।"

"तुम पागल हो गई हो और मुझे भी पागल बनाना चाहती हो," मैंने गुस्से मे जोर से कहा।

"मैं तुम्हे पागल बनाने नही आई। मै तो जानने आई थी कि तुम्हारे दिल मे मेरे लिए भी कोई जगह है या नही। अब मै जान चुकी। मै कल ही चली जाऊँगी।"

"देखो, मगला," मैंने उसके गले मे हाथ डालते हुए कहा, "तुम्हे दु.खी बनाकर मैं कभी सुखी नही रह सकता। अगर मुझसे कोई गलती हुई हो तो माफ करो।"

"केवल शब्दो में प्यार मत दरसाओ," उसने मेरा हाथ अलग हटाते हुए कहा," सच्चा प्यार करो या फिर घृणा करो। मुझे तुम्हारा बीच का रास्ता पसन्द नही।"

"अब तुम जो चाहो करने को मैं तैयार हूँ," मैंने कहा, "अगर तुम यहाँ से चलना चाहती हो तो मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूं। सदाशा को मेरी ज़रूरत नही, तुम्हे मेरी ज़रूरत है, और मैं वादा करता हूं जीवन-पर्यन्त तुम्हारे साथ रहूंगा।"

मंगला का गुस्सा कुछ शात नज़र आया, और मैंने उसका हाथ

पकड कर अपने पलँग पर बिठाते हुए कहा, "मै आज से नही, बहुत पहले से जानता हूँ तुम्हारा असली गुस्सा मुझ पर नही, सदाशा पर है। लेकिन जैसा तुम सदाशा को समझती हो वैसी वह नही है।

और फिर मैने सदाशा की अच्छाइयो का बखान करना शुरू किया। मैने मगला को समझाना चाहा कि अगर कोई स्त्री अपने पति-पुत्र को छोड देती है या अगर पर-पुरुषो से अनुचित सबध रखती है तो सामाजिक दृष्टि से वह जरूर बुरी है, पर हर दृष्टि से बुरी हो इसके माएने यह नही।"

मैने कहा, "जरा ठडे दिमाग से सोचो, विवाह से पहले तुम्हारा भी कितने ही लोगो से अनुचित सबध रह चुका था। लेकिन फिर भी तुम बुरी न थी, तो अब मै सदाशा को बुरा कैसे मान लू?"

मगला फिर भडक उठी, "लड़की ने तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। तुमसे किसी भी बारे में बात करना फिजूल है। तुम्हे अपना कोई कसूर नजर नही आता, न लडकी का ही कोई कसूर नज़र आता है। मैने यहा आकर बहुत बडी गलती की। मैने पति खोया, बेटी खोई और अब मेरे लिए इस संसार मे बचा ही क्या है! खैर, अब मै निश्चिन्त होकर मर सकूंगी, नही तो मुझे अत तक आशका बनी रहती कि कही मैं गलती तो नही कर रही।"

सवाल-जवाब में ही सारी रात गुज़र गई और एक साथ थकावट ने मुझे आ घेरा। पलँग के सिरहाने माथा टेक कर मैने आँखे मूँद ली, और पता नही मंगला कब कमरे से बाहर चली गई।

× × ×

सारी रात कुस्वप्न देखता रहा और जब सुबह नीद टूटी तो मेरे सिर मे दर्द हो रहा था, इतना भीषण दर्द कि मैं बहुत देर तक आँखे मूँदे ही पड़ा रहा। आख़िर जब आँखे खोली तो देखा कि काफी दिन चढ आया था। मै हमेशा की तरह चाय पीने बाहर के कमरे मे चला आया।

मंगला और सदाशा वहाँ पहले से ही बैठी थी। मुझे अन्दर आते

देख सदाशा बोली ·

"लो, बाबा भी आ गए। इन्ही से पूछ लो, मुझ से क्या पूछती हो ?"

"क्या बात है ?" मैंने आशकित होते हुए कहा।

"माँ जानना चाहती हैं कि तुम्हारा और मेरा क्या रिश्ता है ?"

मैं अपना सिर पकड कर बैठ गया। सिर में एक साथ इतनी जोर से दर्द होने लगा कि आंखे खोलकर मगला और सदाशा के मुख के भाव तक न देख पाया।

"तुम जानना चाहती हो बाबा से मेरा क्या सम्बन्ध है ? बाबा मुझे प्यार करते हैं और मैं चाहती हूँ तुम्हारा भी मुझसे यही सम्बन्ध हो। बाबा मेरे पिता हैं और मेरे मित्र भी। तुम मेरी माता तो हो ही, मेरी साथिन भी बन जाओ।"

"मुझे तेरा वेश्या-धर्म स्वीकार नही। अपने चेले अपने जैसो मे ही ढूंढ। मुझे गर्व है अपने पतिव्रत-धर्म पर।" मगला की आवाज़ मे हिंसा बोल रही थी।

"मेरे खयाल मे यह गर्व की बात नहीं बल्कि दुःख की बात है कि तुमने दुनियादारी के फरेब में आकर विवाह में अपना पतन हो जाने दिया। विवाह बहुत अच्छी चीज है—दो इंसानो को मिलाकर एक कर देती है, लेकिन साथ ही दोनो की बुद्धि भी भ्रष्ट कर देती है, यह मेरा अनुभव है।"

"क्यो तुम्हारा भी यही खयाल है क्या ?" मगला ने मेरी तरफ देखते हुए पूछा।

"मैं कुछ नही जानता," मैंने कहा। "इस वक्त मेरे सिर में बहुत दर्द हो रहा है।" वास्तव में मेरा सिर फटा जा रहा था और बोलने से और भी ज्यादा जोर से चपके चलने लगते थे।

"अब क्यों जानोगे ?" मगला ने तीर मारा। "साफ़-साफ कह क्यों नहीं देते कि शादी करके तुमने गलती की।"

"नही, शादी करके मैंने गलती नही की······लेकिन क्या इस वक्त तुम दोनो यह बहस रोक नही सकतीं ? दर्द के मारे मेरे सिर के टुकड़े

टुकडे हुए जा रहे हैं ।"

वे दोनो एक साथ चुप हो गईं । सदाशा ने उठ कर मुझे एस्परीन की गोली दी और मेरे लिए चाय बनाने लगी । मै धीरे-धीरे चाय पीने लगा और वे दोनो चुपचाप मेरी ओर देखती रहीं मानो मुझसे कुछ सुनना चाहती हो । एक साथ कमरे मे इतनी निस्तब्धता छा गई कि दीवार-घड़ी की टिकटिक मन को विचलित करने लगी ।

इतने मे ही एक नौकर ने आकर खबर दी कि गोवर्धनदास के यहाँ से एक आदमी आया था ।

"उसे अन्दर भेज दो," सदाशा बोली ।

"यह वही गोवर्धनदास है जिसके बारे मे कल रात मैंने तुम्हे बताया था ।" मैंने मगला से एक दूसरे स्तर पर बात शुरू करने की कोशिश की ।

"कौन, वही गोवर्धनदास जिसे पहले तपेदिक कर दी और अब बच्चो की तरह बहला कर यह लडकी उसका इलाज करना चाहती है । अरे, एक दिन उसे भी इस नए धोखे का हाल मालूम होगा और वह भी मर जायगा !"

गोवर्धनदास से हम पिछले एक हफ्ते से नही मिले थे, और मेरा खयाल था कि उसने हमे बुलवाने के लिए आदमी भेजा था ।

"कहो, तुम्हारे साहब कैसे हैं ?" मैंने उससे पूछा ।

"कल रात उनका हार्ट फेल होगया ।"

मै अवाक् रह गया । सदाशा की आँखे भी फटी की फटी रह गईं ।

लेकिन मंगला चिल्ला उठी, अब तो खुश है न हत्यारी ! पिशाचिनी ! चाडालिनी !" और उसने मेज़ पर पडा हुआ काँटा सदाशा के माथे पर दे मारा । मैं मंगला को पकड कर बाहर धकेलने लगा, लेकिन वह चिल्लाती रही, "पहले पति का खून पी डाला, अब एक दूसरे भले आदमी की जान ले ली," और मेरी तरफ देखती हुई बोली, "तुम क्या देख रहे हो, अब तुम्हारी बारी है । यह चुडैल है, दूसरों का खून पीकर ही जिन्दा रहती है, और तुम आँखें होते हुए भी अधे हो । अपनी खैरियत चाहते हो तो

इसी वक्त निकल चलो इस घर से !"

"हाँ, चले जाओ, फौरन चले जाओ। मुझे तुम लोगो की कोई ज़रूरत नही," सदाशा ने पीछे से आकर कहा।

मैं मुश्किल मे पड़ गया—किसे रोकूँ, किसे समझाऊँ। मगला आपे से बाहर हो चुकी थी। मुझे धक्का देकर, अपने आपको मुझसे छुडा कर, वह सदाशा के पास दौड़ी चली आई और उसे झिझकोर कर कहने लगी :

"पापेश्वरी! तू मुझे मार डाल, मेरे पति को बख्श दे! क्या मेरे खून से तेरी प्यास न बुझेगी ?"

"यह सब क्या बक रही हो ?" सदाशा ने मगला को अपने से दूर हटाते हुए कहा।

मगला ने जमीन में गिर कर सदाशा के पैर पकड लिए और दहाड-दहाड कर रोने लगी। "अब मै यही जान दूंगी, चाहे कुछ भी हो जाय। मुझे मार डाल, देवी, छुटकारा दिलादे इस पाप के सम्बन्ध से।" 'मै यही मरूँगी, मैं यही मरूँगी' की रट लगाती हुई वह धरती पर सिर पटक-पटक कर रोने लगी।

मैंने और खानसामा ने उसे उठाकर उसके कमरे मे ला पटका। बिस्तरे पर पड़ते ही वह बेहोश हो गई। डाक्टर ने आकर इंजैक्शन लगाया और एक घटे बाद उसने आँखे खोली। वह कुछ न बोली और आँखें फाड़-फाड़ कर इधर-उधर देखती रही। मैंने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा, "अब कैसी तबीयत है ?"

उत्तर में उसकी आँखो से आँसू ढुलक पडे।

शाम को उसकी तबीयत कुछ हल्की हुई। उसने स्नान और पूजा-पाठ किया और एक थाली में फलफूल लेकर मेरे पास आई। मैंने श्रद्धा के साथ प्रसाद स्वीकार किया। थाली एक तरफ रख नीची नज़र कर वह बोली, "तुम मुझे पागल तो नही समझते ?"

"नही, देवी, कैसी बाते कर रही हो ?" मैने उसे आश्वासन दिलाते हुए कहा।

"तो सुनो," उसने चारो तरफ देख कर धीरे से मेरे कान में कहा, विनय भी तपेदिक से मरा था।"

"विनय मर गया ?" मैंने आश्चर्य के साथ पूछा।

"हाँ, इसीलिए तो कहती हूँ मेरी बात मानो और यहाँ से चल दो।"

"विनय की बच्ची कहाँ है ?" मैंने पूछा।

"दिल्ली मे है। एक पडौसी के यहाँ छोडकर आई हूँ।"

थाली लेकर मगला उठ खडी हुई और बोली ·

"आज जो कुछ हुआ उस पर मैं बहुत शर्मिन्दा हू। मैंने वर्षों के अपने सयम को तोड डाला। मैंने क्रोध न करने की एक प्रतिज्ञा की थी और वह भी तोड डाली। अब मुझे प्रायश्चित्त करना होगा। आज से मैं निराहार मौनव्रत करूँगी और तभी उठूँगी जब मेरा चित्त शुद्ध हो जायगा। मुझे क्षमा करो, नाथ! तुम्हारी क्षमा बिना मेरी गति नही।" और नीचे झुक कर उसने मेरे पैर छू लिए।

× × ×

मगला को मौनव्रत रखे चार दिन हो चुके थे। वह दिन भर अपने कमरे मे रहती और सिर्फ सुबह-शाम मेरे और सदाशा के कमरे मे एक धाय की तरह आकर प्रसाद रख चली जाती। मैं हमेशा श्रद्धा के साथ प्रसाद स्वीकार करता, लेकिन सदाशा उसे छूती तक न थी। मंगला ने आँखो ही आँखो मे मुझसे इस बात की शिकायत की, और मैंने सदाशा को समझाया कि मगला स्वय अपने व्यवहार से आहत होकर प्रायश्चित्त कर रही थी और ऐसी हालत मे उसका दिया हुआ प्रसाद न पाना अन्याय होगा।

"बाबा, मुझे माँ की कोई बात पसन्द नही। प्रायश्चित्त वगैरह मुझे एक तरह का स्वाँग नजर आता है। अगर वह अपनी गलती महसूस करती है तो बस काफी है।" सदाशा ने कहा।

"लेकिन बेटी," मैंने आग्रह करते हुए कहा, "अगर तू माँ को खुश लिए ही प्रसाद खा लिया करे तो कोई बुराई है ?"

"बाबा, अगर तुम यही चाहते हो तो तुम्हारी खातिर यह भी सही," उसने एक अजीब अहसान जतलाते हुए कहा।

उस शाम सदाशा ने मंगला का दिया हुआ प्रसाद स्वीकार किया और मैं समझा वह प्रसाद एक नई चिर-स्थायी मैत्री का अध्याय आरम्भ करेगा। मगला काफी खुश नजर आई।

"अब व्रत कब तोडोगी ?" मैंने पूछा।

लिख कर उसने उत्तर दिया, "एक-दो दिन मे व्रत का परिणाम मालूम होगा।"

एक दिन और बीत गया।

अगले दिन यानी मगला के व्रत के छठे दिन मैं सुबह ही घर से बाहर निकल गया और रात को देर से घर लौटा। दिन भर सोचने के बाद मैं इसी नतीजे पर पहुँचा कि सदाशा को छोड़कर मगला के साथ दिल्ली वापस जाना ही होगा। और फिर सदाशा की लड़की भी तो दिल्ली में थी। उसके प्रति भी मेरी कुछ जिम्मेदारी थी।

घर जब पहुँचा तो सब सो चुके थे। मैं भी चुपचाप अपने कमरे मे जाकर सो गया।

दूसरे दिन सुबह सर्वत्र शान्ति छाई हुई थी। मैंने चाय पी लेकिन मंगला और सदाशा में कोई भी अपने कमरे से बाहर न निकली। सारा अखबार पढ चुका, फिर भी वे बाहर न निकली। मैं नहा-धोकर कपड़े बदल कर बाहर आया और जब फिर भी मगला का दरवाजा बंद पाया तो मेरा माथा ठनका। सदाशा की मुझे फिक्र न थी, वह अक्सर देर से सोकर उठती थी। लेकिन मगला तो सुबह जल्दी उठने वालो में थी, और दस बज चुके थे।

मैंने महरी से कहा, "जाओ, देखो क्या बात है ?" और थोडी देर बाद ही मगला के कमरे के बाहर से महरी की चीख सुनाई दी।" "बाबूजी ! बाबूजी !" कहती वह दौड़ी आई, "गजब हो गया ! माँजी मर गईं !"

मगला मर चुकी थी। उसका सारा चेहरा नीला पड गया था और

जीभ दाँतो-तले दबी थी। वह साक्षात् उस महाकाली का रूप था जो महाकाल को जन्म देकर महाकाल को खा गई।

सदाशा का कमरा अन्दर से बद था। मैंने बार-बार दरवाजा खट-खटाया लेकिन कोई जवाब न मिला। माली, ड्राइवर, खानसामा और दूसरे सब नौकर-चाकर अपनी मालकिन के कमरे के बाहर इकट्ठे होकर आवाज देने लगे, मगर अन्दर से कोई आहट तक न आई। आखिर, उसका ड्राइवर रोशनदान से अन्दर घुसा और उसने धीरे से दरवाज़ा खोल दिया।

हम सब अन्दर चले आए। सदाशा सुख की नीद सो रही थी लेकिन उसका चेहरा नीला पड चुका था। गौरवर्ण सदाशा अब नीलिमा बन गई थी, योगियो की आराध्य देवी चिन्मयी बन गई थी। मैंने धीरे से उसका भी मुँह ढक दिया।

मगला ने सदाशा को विष दिया था, और स्वय भी खाया था। यह वह पत्र लिखकर न छोडती तो भी स्पष्ट था।

दोनो देवियो की अत्येष्टि कर मैं सध्या को घर लौट आया।

× × ×

आज मुझे यह सब बाते कहानी की तरह लग रही हैं क्योकि वास्तव मे न मगला मेरी बीवी थी और न सदाशा मेरी बेटी। वे तो दो देवियाँ थी जो नाटक रचाने स्वर्ग से उतरी थी और अपना-अपना रूप दिखाकर अंतर्ध्यान हो गई।

कलकत्ता मे काली का मदिर है। मदिर मे स्थित प्रतिमा के एक साथ दो रूप दिखाए गए हैं—कराल और कृपाल। उसकी चारो भुजाएँ सर्वशक्ति की प्रतीक हैं। ऊपरी बाएँ हाथ में खून से लथपथ तलवार है और निचले में नरमुण्ड। ऊपरी दाहिना हाथ अभयदान की मुद्रा में उठा है और निचला वरदान देने आगे बढा है। वह आदि काली है, परस्पर विरोधी तत्त्वो का समन्वय है; एक ओर सम्पूर्ण विनाश है और दूसरी ओर असीम दुलार।

यह नारी की पूर्णता है। यही सृजनात्मकता का आदि और अंत है।